सन्तुलन
इस्लाम का स्वभाव

डॉ॰ मुहम्मद सऊद आलम क़ासिमी

हिदायत की रौशनी

हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया–

''आसानी पैदा करो, मुश्किल न खड़ी करो और ख़ुशख़बरी सुनाओ, नफ़रत न पैदा करो।''

(हदीस : बुख़ारी)

विषय-सूची

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम।

"अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहमवाला है।"

प्रस्तावना

इस्लाम इनसान के विचार और व्यवहार के सुधार और उसके दिल-दिमाग़ की तरबियत (प्रशिक्षण) के लिए आया है। यह तो सिर्फ़ अल्लाह ही को मालूम है कि कौन-सा अमल (कर्म) किस हद तक इनसान के लिए फ़ायदेमन्द है। इनसान का फ़र्ज़ और कर्तव्य ख़ुदा के आदेशों का पालन करना और उसके नियमों और सीमाओं का पूरा-पूरा ध्यान रखना है। इसी में उसकी भलाई और कामयाबी है। जिस तरह एक माहिर हकीम बेहतर समझता है कि कौन-सी दवा किस हद तक मरीज़ के लिए लाभदायक है। अगर मरीज़ अपनी तरफ़ से हकीम के नुस्ख़े में कम या ज़्यादा कर दे तो वह नुस्ख़ा उसकी बीमारी में बढ़ौत्तरी का सबब बन सकता है। उसी तरह इस्लाम का हाल है। अगर हम उसके आदेशों और नियमों के अनुपालन में कमी-बेशी करते हैं तो इससे हमारी बदनसीबी बढ़ सकती है और हमारे लिए मुश्किल पैदा हो सकती है। इस्लाम इनसान के लिए सुकून भी है और नेमत भी, यह सख़्ती नहीं आसानी चाहता है और यह तंगी का नहीं कुशादगी का दीन (धर्म) है।

अल्लाह का फ़रमान है–

"उसने तुमको चुन लिया है और तुमपर दीन (धर्म) की किसी बात में तंगी नहीं रखी है।" (क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-78)

ख़ुदा के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने कहा–

"दीन आसान है, जो शख़्स दीन में सख़्ती करता है दीन उसे मग़लूब (पराजित) कर देता है।" (हदीस : बुख़ारी)

इस नरमी और आसानी, रहमत और कुशादगी का दारोमदार इस बात पर है कि कामों और मामलों में सन्तुलन यानी बीच का रास्ता अपनाया जाए। मगर कभी-कभी इनसान दीन के नाम पर अपने-आपको बेजा

सख़्तियों और परेशानियों में डाल लेता है और कभी ऐसा होता है कि उसकी ख़ाहिशें-जज़बात, ख़ुशी-नाराज़ी, दीन और शरीअत की चादर ओढ़ लेती हैं और वे उसके विचार और व्यवहार में असन्तुलन का कारण बन जाती हैं।

नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है कि तीन चीज़ें नजात देनेवाली हैं और तीन चीज़ें हलाक करनेवाली हैं। नजात देनेवाली तीन चीज़ें ये हैं—

1. खुले और छिपे हर वक़्त अल्लाह से डरना।

2. ख़ुशी और नाराज़ी दोनों हालतों में सिर्फ़ हक़ बात कहना।

3. मालदारी और ग़रीबी दोनों हालतों में सन्तुलित और बीच का रास्ता अपनाना।

हलाक और तबाह करनेवाली तीन चीज़ें ये हैं—

1. मन की ख़ाहिश, इनसान जिसका पैरोकार (अनुयायी) हो जाए।

2. कंजूसी जिस पर अमल किया जाए।

3. इनसान का उज्बे-नफ़्स यानी ख़ुदपसन्दी में गिरफ़्तार हो जाना और यह इन हलाक कर देनेवाली चीज़ों में सबसे ज़्यादा सख़्त है।

(हदीस : बैहक़ी)

इस किताब में मन की ख़ाहिशों से बचने और बीच के रास्ते को अपनाने की शिक्षा दी गई है। ज़ाहिर में दो वजहों से इसपर कुछ कहने की ज़रूरत महसूस हुई। एक तो यह कि तसव्वुफ़ की कुछ मशहूर किताबें जैसे— फ़वाइदुल-फ़ुवाद, मलफ़ूज़ाते-हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह॰), ख़ैरुल-मजालिस, मलफ़ूज़ाते-शैख़ नसीरुद्दीन चिराग़ देहलवी, सियरुल-औलिया लेखक मीर ख़ुर्द वग़ैरा पढ़ने का मौक़ा मिला। इन किताबों में बुज़ुर्गों की तरफ़ कुछ ऐसी बातें जोड़ी गई हैं जो अक़्ली तौर पर मुश्किल और अमली तौर पर नामुमकिन मालूम होती हैं।

इसी तरह फ़ज़ाइले-आमाल की कुछ किताबें पढ़ने और सुनने का मौक़ा मिला। उनमें भी इसी तरह की कमज़ोरी नज़र आई। अगर उनकी हैसियत सिर्फ़ लतीफ़ों और कहानी-क़िस्सों की होती तो परेशानी की कोई बात न थी। चूँकि इस तरह के क़िस्सों और बयानों से एक ख़ास क़िस्म का मज़हबी

रुझान बनता है और इस्लाम की जो तस्वीर उभरती है वह क़ुरआन और हदीस को पढ़ने और जाननेवाले के लिए अजनबी महसूस होती है। इसलिए ख़याल आया कि क़ुरआन, हदीस, पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की ज़िन्दगी और सहाबा की ज़िन्दगी की रौशनी में देखा जाए कि शरीअत हमसे क्या चाहती है? और एतिदाल यानी सन्तुलन या बीच का रास्ता अपनाने के सिलसिले में इस्लाम की क्या तालीम है?

दूसरी तरफ़ आज के समाज में ख़ास तौर पर नई नस्ल में ज़िन्दगी के विभिन्न मामलों में इन्तिहापसन्दी नज़र आती है और यह बात भी देखने को मिलती है कि वे कभी एक सीमा पर होते हैं और कभी विपरीत उसके दूसरी सीमा पर। शिद्दत (कट्टरता) और इन्तिहापसन्दी (अतिवाद) के रवैये ने ग़ैर-मुस्लिमों के ज़ेहन में इस्लाम की ऐसी तस्वीर बना दी है जो इस्लाम के फैलने में रुकावट बन गई है, बल्कि नफ़रत और विरोध का माहौल बनता जा रहा है, यह चीज़ मुसलमानों के वुजूद के लिए ख़तरनाक है। इन्तिहापसन्दी एक अच्छे और सेहतमन्द इस्लामी माहौल के लिए नुक़्सानदेह है। इसी लिए चाहे राजनीतिक मामला हो या आर्थिक, समाजी मामले हों या रूहानी, व्यक्तिगत रवैये हों या सामूहिक यानी ज़िन्दगी का कोई पहलू ऐसा नहीं है जिसमें असन्तुलन की ख़राबी मौजूद न हो। इसका नतीजा यह है कि हमारी ज़िन्दगियाँ इत्मीनान और सुख-चैन से ख़ाली और उलझनों और परेशानियों से भरी हुई नज़र आती हैं। इसका इलाज सिर्फ़ यह है कि हम अपनी पसन्द-नापसन्द और ख़ाहिशों की बुनियाद अल्लाह और उसके पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) की हिदायतों पर रखें और अपने सारे काम उन हिदायतों के मुताबिक़ करें।

अल्लाह से दुआ है कि वह हमें अपनी रहमत अता करे और हमारे मामलों और कामों में हमारी रहनुमाई फ़रमाए।

—मुहम्मद सऊद आलम

15 शअबानुल-मुअज़्ज़म, सन् 1414 हिजरी

सन्तुलन

इस्लाम का स्वभाव

सन्तुलन, यानी बीच का रास्ता अपनाना और हक़ीक़तपसन्दी इनसानी ज़िन्दगी का सेहतमन्द उसूल है। मामलों और कामों में सन्तुलन यानी बीच का रास्ता इख़्तियार करने से आदमी की ज़िन्दगी भी बढ़ती है और उसकी ज़िन्दगी की ताक़त और सलाहियत में भी इज़ाफ़ा होता है।

व्यक्ति और समाज का कमाल इस बात में है कि सन्तुलन यानी बीच के रास्ते पर पाबन्दी के साथ चला जाए। सन्तुलन ही ज़िन्दगी का वह तरीक़ा है जिसपर इनसान की हिफ़ाज़त, मज़बूती से जमने और बाक़ी रहने और उसकी तामीर और तरक़्क़ी का दारोमदार है। सन्तुलन ही वह कारगर नुस्ख़ा है जो ज़िन्दगी की मुसीबतों और परेशानियों के झुण्ड में सुकून और इत्मीनान दिलाता है। इसके मुक़ाबले में इन्तिहापसन्दी, शिद्दतपसन्दी, कभी एक सीमा पर रहने और कभी दूसरी सीमा पर रहने की नीति यानी असन्तुलन एक घातक रोग है। यह रोग जिस व्यक्ति, गरोह और क़ौम को लग जाए वह सीधे रास्ते से भटक जाती है और अपनी तबाही का सामान ख़ुद ही जुटाने लगती है। यह सिर्फ़ ज़िन्दगी की ताक़त और सलाहियत ही को प्रभावित नहीं करती बल्कि ज़िन्दगी की मुद्दत को भी कम कर देती है।

शिद्दतपसन्दी से बचना

इस्लाम ने सख़्त रवैया अपनाने से बचने की, नरमी और रहमत का रवैया अपनाने की शिक्षा दी है। शिद्दतपसन्द, सख़्तमिज़ाज और लोगों से सख़्ती से पेश आनेवाले लोगों को इस्लाम ने चेतावनी दी है कि वे अल्लाह की रहमत से महरूम रहेंगे। ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल०) का फ़रमान है—

"जन्नत में सख़्त दिल और घमण्डी दाख़िल नहीं हो सकता।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

अल्लाह तआला ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को सारे जहानों के लिए

रहमत बनाकर भेजा, इसकी हिकमत क़ुरआन मजीद इस तरह बयान करता है–

"यह अल्लाह की बड़ी रहमत है कि आप (मुहम्मद सल्ल०) लोगों के लिए नर्मदिल हैं, अगर आप सख़्त मिज़ाज और सख़्त दिल होते तो ये सब आपके आसपास से छँट जाते।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-159)

इस्लाम ने नरमी को अच्छे अख़लाक़ और सख़्ती को बदअख़लाक़ी की निशानी ठहराया है। नरमी को हुस्न यानी सुन्दरता और सख़्ती को ऐब यानी बदसूरती कहा है। नरमी पर इनाम और सख़्ती पर सज़ा का एलान किया है। नबी (सल्ल०) ने कहा–

"अल्लाह नर्म है, नरमी को पसन्द करता है और नरमी पर वह इनाम देता है जो सख़्ती पर नहीं देता।" (हदीस : अबू-दाऊद)

एक दूसरे मौक़े पर नबी (सल्ल०) ने अपनी बीवी हज़रत आइशा (रज़ि०) से फ़रमाया–

"जिस चीज़ में नरमी होती है उसमें हुस्न और ख़ूबसूरती पैदा कर देती है और जिस चीज़ से नरमी चली जाती है उसको ऐबदार कर देती है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

असन्तुलन कभी तो मिज़ाज में होता है, कभी सोच-विचार में, कभी कामों और किरदार में, कभी काम के तरीक़े और अन्दाज़ में और कभी जज़बात (भावनाओं), रवैये और रुझान में होता है। कभी यह मज़हबी और समाजी मामलों में दिखाई देता है, कभी आर्थिक और राजनीतिक हालात में, कभी ख़ुशी और ग़म के माहौल में। और सबसे ज़्यादा यह अक़ीदत (श्रद्धा), मुहब्बत और नफ़रत व दुश्मनी के जज़बात में दिखाई देता है। असन्तुलन जहाँ भी होता है वह अपने बुरे असर दिखाकर रहता है। यह आदमी को दीमक की तरह चाटता और कमज़ोर करता रहता है और आख़िरकार उसकी तबाही का सबब बन जाता है। यह जितनी तादाद और मिक़दार में होता है उसी हिसाब से नुक़सान पहुँचाता और अपना असर दिखाता है। इसी लिए

इस्लाम ने ईमानवालों को सन्तुलन यानी बीच की राह अपनाने की शिक्षा दी है। चाहे वह अपने निजी मामले में हो, या दूसरों के साथ सुलूक व बरताव में, या दुनिया को बरतने और इस्तेमाल करने में, यानी किसी भी हालत में सन्तुलन और एतिदाल का दामन हाथ से नहीं छोड़ा जाना चाहिए।

सन्तुलन (एतिदाल या बीच का रास्ता) क्या है?

वैसे तो सन्तुलन या एतिदाल ज़िन्दगी का जाना-पहचाना और भरोसेमन्द उसूल है, मगर इसके बारे में कुछ ग़लतफ़हमियाँ होने लगी हैं। इसलिए मुनासिब मालूम होता है कि आगे बढ़ने से पहले हम यह तय कर लें कि इन्तिहापसन्दी (अतिवाद) क्या है और सन्तुलन से हमारी क्या मुराद है? क्योंकि सिर्फ़ दो इन्तिहाओं (अतियों) के बीच रहना ही अगर सन्तुलन हो तो कुफ़्र (इनकार) और ईमान (क़बूल कर लेना) के बीच रहना भी सन्तुलन बन जाएगा, हालाँकि वह निफ़ाक़ (कपटाचार) है, बल्कि अक़ीदे में पक्का होने और नेक और भले काम करने को भी इन्तिहापसन्दी माना जाएगा, जबकि उसी पर नजात का दारोमदार है।

सन्तुलन का मतलब दो मुक़ाबिल (प्रतिद्वन्द्वी) या विरोधी पहलुओं के बीच सन्तुलन क़ायम करना है। इस तरह कि एक पहलू ग़लत तौर पर असरदार और दूसरा नज़रअन्दाज़ न हो जाए। सन्तुलन में न्याय यानी इनसाफ़ अस्ल चीज़ है। इसका मतलब यह है कि जिस पहलू का जो हक़ है उसका ध्यान रखा जाए और हर दो पहलुओं के साथ इनसाफ़ किया जाए। ख़ुलासा यह है कि इनसाफ़ और तवाज़ुन से मिलकर ही सन्तुलन (एतिदाल) वुजूद में आता है और यही इस्लामी शरीअत (धर्म-विधान) की खुसूसियत है और इसका हर ईमानवाले में पाया जाना ज़रूरी है। आसमानी हिदायत (ईश-मार्ग-दर्शन) का मक़सद भी यही है। क़ुरआन मजीद में कहा गया है—

> "हमने अपने पैग़म्बरों को साफ़-साफ़ निशानियों के साथ भेजा और उनके साथ किताब और तराज़ू उतारी ताकि लोग इनसाफ़ पर क़ायम हों।" (क़ुरआन, सूरा-57 हदीद, आयत-25)

कायनात सन्तुलन पर क़ायम है

खुदा ने इस महान और ख़ूबसूरत कायनात को सन्तुलन पर क़ायम किया है। आसमान, चाँद-सूरज, तारे, फैली हुई फ़िज़ा, ज़मीन, समुद्र, पेड़-पौधे, पत्थर-पहाड़ और उनमें रहनेवाली अनगिनत मख़लूक़ इन सबके बीच ख़ुदा की फ़ितरत ने सन्तुलन और तवाज़ुन (Balance) रखा है, इसी सन्तुलन की बदौलत सब अपनी जगह पर क़ायम हैं और इनसानों के लिए फ़ायदेमन्द और आराम-चैन पहुँचानेवाले बने हुए हैं। अगर इनका सन्तुलन बिगड़ जाए तो ये सब एक-दूसरे से टकराकर ख़त्म हो जाएँगे। दुनिया का निज़ाम छिन्न-भिन्न हो जाएगा और इनसानी ज़िन्दगी का अन्त हो जाएगा। ख़ुदा के बनाए हुए इस तवाज़ुन और सन्तुलन के निज़ाम को क़ुरआन मजीद ने इन लफ़्ज़ों में बयान किया है—

> "अल्लाह ने आसमान को ऊँचा किया और मीज़ान (तुला) क़ायम कर दी, इसका तक़ाज़ा यह है कि तुम मीज़ान में ख़लल (बाधा) न डालो।" (क़ुरआन, सूरा-55 रहमान, आयतें-7,8)

मीज़ान यानी तुला से मुराद सन्तुलन और तवाज़ुन है, क़ुरआन के टीकाकार अल्लामा इब्ने-कसीर (रह०) लिखते हैं—

> "अल्लाह ने आसमान और ज़मीन को हक़ और इनसाफ़ के साथ पैदा किया है ताकि सारी चीज़ों में हक़ और सन्तुलन क़ायम हो जाए।" (तफ़सीर इब्ने-कसीर, 4/271)

अल्लामा जारुल्लाह ज़मख़शरी (रह०) लिखते हैं—

> "अल्लाह ने बन्दों के आदेशों, मामलों, इबादतों और उनके लेन-देन में मसावात (बराबरी) और सन्तुलन को मीज़ान (तराज़ू) से वाबस्ता (सम्बद्ध) किया है।" (अल-कश्शाफ़, 4/444)

इस कायनात (सृष्टि) में पाए जानेवाले सन्तुलन का तक़ाज़ा है कि इनसान इसपर सोच-विचार करे, इसे क़ायम रखे और ख़ुद अपने समाज और मामलों में सन्तुलन और तवाज़ुन से काम ले, इसी लिए इन आयतों के तुरन्त बाद यह भी कहा गया है—

"इनसाफ़ के साथ ठीक-ठीक तौलो और तराज़ू में डंडी न मारो।"

(क़ुरआन, सूरा-55 रहमान, आयत-9)

सन्तुलन प्रकृति का सौन्दर्य (हुस्न) है

कायनात अल्लाह की ख़ूबसूरत रचना है, उसने जो चीज़ भी बनाई है बेहतरीन बनाई है और उसकी हर चीज़ ख़ूबसूरती को ज़ाहिर कर रही है यानी जमाल (सुन्दरता) और कमाल (परिपूर्णता) दोनों में अपनी मिसाल आप है। क़ुरआन कहता है—

"उस हस्ती ने हर चीज़ को बहुत ही अच्छे तरीक़े से बनाया है।"

(क़ुरआन, सूरा-32 सजदा, आयत-7)

कायनात (सृष्टि) में जो सौन्दर्य, ख़ूबसूरती और आकर्षण नज़र आता है वह इसके सन्तुलन और तवाज़ुन ही की वजह से है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि सन्तुलन कायनात और फ़ितरत का हुस्न है। इसके तमाम अंशों में बाहमी मेल-जोल और आपसी सम्पर्क, अनुपात और ताल-मेल पाया जाता है, असन्तुलन और बेढंगापन नहीं। इस सन्तुलन और तवाज़ुन का अवलोकन और अध्ययन करने की दावत क़ुदरत इस तरह देती है—

"तुम रहमान की रचना में किसी तरह की असंगति नहीं पाओगे, फिर पलटकर देखो तुम्हें कोई ख़लल नज़र आता है? बार-बार निगाह दौड़ाओ, तुम्हारी निगाह थककर नामुराद पलट आएगी।"

(क़ुरआन, सूरा-67 मुल्क, आयतें-3,4)

कायनात में जो चीज़ जहाँ जिस अनुपात से चाहिए थी ख़ुदा ने उसी अनुपात से रखी है, जितने रंग, जितने नूर (प्रकाश), जितने भौतिक तत्त्वों और तवानाई (ऊर्जा) के अंशों की ज़रूरत थी उसका बेहतरीन निश्चित अन्दाज़ा करके रखा गया है। क़ुरआन में ख़ुदा कहता है—

"हमने हर चीज़ एक निश्चित के साथ पैदा की है।"

(क़ुरआन, सूरा-54 क़मर, आयत-49)

जिस तरह चाय के तत्त्व यानी पानी, दूध, चीनी और चाय-पत्ती के

अनुपात का ख़याल रखे बिना अच्छी चाय नहीं बन सकती, उसी तरह कायनात (सृष्टि) में सन्तुलन और अनुपात के बिना सुन्दरता पैदा नहीं हो सकती। अगर इस अनुपात को बिगाड़ दिया जाए तो बदसूरती पैदा हो जाएगी, यानी असन्तुलन बदसूरती का ज़रिआ बन जाएगा। फ़ितरत ने इसी तरह बन्दों के कामों का हुस्न भी एतिदाल (तवाज़ुन और सन्तुलन) में रखा है। क़ुरआन मजीद में ज़िन्दगी और मौत की अर्थवत्ता को कर्मों की सुन्दरता से जोड़ा गया है।

"उसने ज़िन्दगी और मौत को इसलिए बनाया है ताकि वह तुम्हारी परीक्षा ले कि तुममें से कौन अच्छा कर्म करनेवाला है।"

(क़ुरआन, सूरा-67 मुल्क, आयत-2)

यह कर्म की सुन्दरता और अच्छाई सन्तुलन और एतिदाल से पैदा होती है यानी अल्लाह के हुक्म में अपनी तरफ़ से न कोई कमी की जाए और न अपने मन से कोई बढ़ौत्तरी की जाए।

पिछले लोगों का असन्तुलन

पिछले लोगों और क़ौमों की गुमराही, हलाकत और बरबादी के कारणों का अध्ययन किया जाए तो एक बड़ा कारण उनकी बेएतिदाली यानी असन्तुलन नज़र आता है। यहूदियों और ईसाइयों की बरबादी और गुमराही का कारण क़ुरआन और हदीस में यह बयान किया गया है कि वे लोग सन्तुलन की राह से हट गए थे और सोच-विचार और व्यवहार में या तो इस सीमा पर होते या उस सीमा पर। क़ुरआन मजीद आसमानी किताबों की अलमबरदार क़ौमों की हालत बयान करते हुए कहता है—

"और अगर वे लोग (यहूदी और ईसाई) तौरात और इंजील और उन जैसी दूसरी किताबों को क़ायम करते जो उनके रब की तरफ़ से उनके पास भेजी गई थीं तो उनके लिए ऊपर से रोज़ी बरसती और उनके नीचे से उबलता। उनमें से कुछ लोग तो सीधे रास्ते पर चलते हैं मगर उनके ज़्यादातर लोग बुरे कामों में मुब्तला हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-66)

"कुछ लोग सीधे रास्ते पर चलते हैं" की व्याख्या करते हुए अल्लामा शब्बीर अहमद उसमानी (रह॰) सूरा-माइदा आयत-66 के हाशिए में लिखते हैं–

"ये वे गिनती के लोग हैं जिन्होंने ख़ुशक़िस्मती से बीच की और सन्तुलित राह अपनाई।" (क़ुरआन, अनुवाद महमूदुल-हसन)

किताबवालों के ज़्यादातर लोग असन्तुलन का शिकार हुए और गुमराही उनका मुक़द्दर बन गई। नबी (सल्ल॰) ने कहा–

"तुम्हारे पहले गुज़रे लोगों यानी किताबवालों को दीन में इन्तिहापसन्दी (अतिवाद) और ग़ुलू (अत्युक्ति) ही ने हलाक किया।"

(हदीस : मुसनद अहमद, इब्ने-माजा)

जब हम किताबवालों का इतिहास पढ़ते हैं तो देखते हैं कि यहूदियों ने नबियों (अलैहि॰) का अपमान किया, यहाँ तक कि उनको क़त्ल कर देने को तैयार हो गए और ईसाइयों ने पैग़म्बरों के सिलसिले में मुबालग़े (अतिश्योक्ति) से काम लिया यहाँ तक कि उनको ख़ुदा बना लिया। यहूदियों ने हुरमत (हराम करने) में इन्तिहापसन्दी की, यहाँ तक कि अल्लाह की हलाल की हुई चीज़ों को भी हराम कर लिया और ईसाई चीज़ों को हलाल और जाइज़ करने में उसी सीमा तक पहुँच गए कि उन चीज़ों को भी हलाल कर लिया जो तौरात में हराम ठहरा दी गई थीं। उनके धर्म-गुरुओं (पोप व पादरी) ने खुल्लम-खुल्ला कहा कि हर चीज़ पाक लोगों के लिए है, जबकि इंजील की व्याख्या के अनुसार हज़रत ईसा (अलैहि॰) पवित्र तौरात को निरस्त करने नहीं बल्कि उसे मुकम्मल करने आए थे (हदीस : इब्ने-माजा)। यहूदियों ने माद्दियत (भौतिकवाद) में मुबालग़ा (अतिश्योक्ति) से काम लिया और ईसाइयों ने रूहानियत (अध्यात्मिक) में। नतीजा यह हुआ कि दोनों गरोह सन्तुलित मार्ग और सीधे रास्ते से बहुत दूर जा पड़े। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने कहा–

"बनी-इसराईल का मामला एतिदाल के साथ चलता रहा, यहाँ तक कि उनमें क़ैद हुई लौंडियों की औलाद पैदा हुई। (इसके बाद)

उन्होंने शरीअत (धर्म-विधान) को छोड़कर अपनी ही राय को मज़हब बनाया, ख़ुद भी गुमराह हुए और दूसरों को भी गुमराह किया।" (हदीस : इब्ने-माजा)

अल्लाह ने बनी-इसराईल को इन्तिहापसन्दी से बचने की नसीहत करते हुए कहा—

"कह दो, ऐ किताबवालो! अपने दीन (धर्म) में नाहक़ ग़ुलू (अतिश्योक्ति) से काम न लो और न उन लोगों की इच्छाओं का पालन करो जो तुमसे पहले गुमराह हुए और बहुतों को गुमराह किया और सीधे रास्ते से भटक गए।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-77)

यही वजह थी कि प्यारे नबी (सल्ल॰) ने मुस्लिम समुदाय को पिछली उम्मतों की बेएतिदाली (असन्तुलन) की पैरवी करने से मना किया और बहुत स्पष्टता के साथ कहा—

"अपने ऊपर सख़्ती न करो, तुमसे पहले की क़ौमें अपने ऊपर सख़्ती करने की वजह से हलाक हुईं, उनकी बाक़ी रहनेवाली नस्लें आज भी गिरजों और बुतख़ानों (मूर्तिगृहों) में तुमको मिलेंगी।" (हदीस : अबू-दाऊद)

सन्तुलन और बीच की राह अपनानेवाली उम्मत मुसलमान हैं

पिछली उम्मतों की बेएतिदाली पर सुधार की नज़र रखते हुए इस्लामी शरीअत एतिदाली नुस्ख़े के साथ सामने आई। इस शरीअत (धर्म-विधान) को सीधा मार्ग कहा गया। ख़ुदा ने कहा—

"और निस्सन्देह यही मेरा सीधा रास्ता है, इसलिए तुम इसी पर चलो और दूसरे रास्तों पर न चलो कि वे अल्लाह के रास्ते से हटाकर तुम्हें भटका देंगे। यह है वह हिदायत जो तुम्हारे रब ने तुमको की है ताकि तुम (गुमराही से) बचो।" (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-153)

सीधा रास्ता, बीच की राह और एतिदाल यहाँ एक ही मतलब के दो स्पष्ट रूप हैं। इसको इस तरह समझा जाए कि अगर दो बिन्दु कुछ दूरी पर

रखे जाएँ और उनके बीच कुछ लकीरें खींची जाएँ तो जो बीच की लकीर होगी, वही सीधी होगी। इसी लिए सीधे रास्ते पर चलने को एतिदाल और बीच का रास्ता कहा गया है और इस शरीअत रखनेवाली उम्मत को मोतदिल (सन्तुलित) कहा गया है—

"और इसी प्रकार हमने तुम मुसलमानों को एक बीच का उत्तम समुदाय बनाया है ताकि तुम दुनिया के लोगों पर गवाह रहो और रसूल तुम पर गवाह हो।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-143)

इस आयत में "बीच का उत्तम समुदाय" का मतलब क़ुरआन के टीकाकारों ने इनसाफ़पसन्द (न्यायप्रिय) और बीच की राह अपनानेवाली उम्मत कहा है। (तफ़्सीर-अल-कश्शाफ़)

इमाम राज़ी बयान करते हैं—

"बीच (वस्त) अस्ल में दोनों किनारों से दूर होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं कि कमी-बेशी की दोनों सीमाएँ घातक होती हैं, इसी लिए अख़लाक़ में सन्तुलित वह आदमी होता है जो दोनों इन्तिहाओं से दूर हो, वही फ़ज़्लवाला और सन्तुलनवाला होता है।"

(तफ़्सीर-अल-कबीर-4/97)

ज़ुहैर का शे'र है, जिसका मतलब यह है—

"वे न्यायप्रिय लोग हैं, मख़लूक़ उनके फ़ैसले पर राज़ी हो जाती है जब कोई बड़ी घटना घटित होती है।"

मुस्लिम उम्मत (समुदाय) को एतिदाल (सन्तुलन) पर रहनेवाली उम्मत ही नहीं बनाया गया है बल्कि उसे 'लोगों पर गवाह होने' के फ़र्ज़ (कर्त्तव्य) पर भी नियुक्त किया गया है, यानी केवल उसका एतिदाल पर रहना ही काफ़ी नहीं है बल्कि पूरी दुनिया की क़ौमों को एतिदाल की राह पर लाने की कोशिश करनी भी ज़रूरी है, सन्तुलित रहने के साथ-साथ सन्तुलित रखना भी ज़रूरी है। याद रखना चाहिए कि गवाही देने के लिए अदालत यानी इनसाफ़पसन्दी (न्यायप्रियता) लाज़िम है। गवाह अगर न्यायप्रिय न हो तो गवाही का फ़र्ज़ अदा नहीं कर सकता। अगर मुस्लिम उम्मत मोतदिल

(सन्तुलित) न हो तो वह दूसरी क़ौमों पर गवाह और निगराँ नहीं बन सकती। इस समुदाय का आदर्श नमूना वे लोग हैं, जिनकी तालीम व तरबियत ख़ुद अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने की थी। ये पैग़म्बर (सल्ल॰) के प्यारे साथी थे, इन्तिहापसन्दी, अत्याचार, लड़ना-झगड़ना और असन्तुलन से कितना अधिक बचते थे इसका अन्दाज़ा इब्ने-इस्हाक़ (रह॰) के इस बयान से लगाया जा सकता है, वे कहते हैं—

"मैंने अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) के साथियों (रज़ि॰) में जो मुझसे पहले गुज़रे हैं अकसर को दखा है, कोई जमाअत (गरोह) उनसे अधिक सरल और कम-से-कम सख़्ती अपनानेवाली मैंने नहीं पाई।" (हदीस : सुनने-दारमी)

ख़ुदा ने इनसान के हाथों में हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की शरीअत का नुस्ख़ा दिया और इस शरीअत में सन्तुलन और बीच की राह पर चलने को पैग़म्बरी का पच्चीसवाँ हिस्सा क़रार दिया—

"सीधे रास्ते पर चलना, अच्छा स्वभाव और एतिदाल (सन्तुलन) पैग़म्बरी का पच्चीसवाँ हिस्सा है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

मालूम यह हुआ कि असन्तुलन को अपनाकर इनसान नबी के द्वारा प्राप्त होनेवाले फ़ायदों के पच्चीसवें हिस्से से वंचित रह जाता है।

इस्लाम की बुनियाद सन्तुलन पर है

इस्लाम ने सन्तुलन और तवाज़ुन अपनाने की तरबियत भी दी है और अपने आदेशों और नियमों, हिदायतों, सिफ़ारिशों और अक़ीदा व अमल की व्यवस्था में इस उसूल का पूरा-पूरा ध्यान भी रखा है।

अल्लाह का फ़रमान है—

"(ऐ नबी)! कह दो कि मेरे रब ने सन्तुलित मार्ग अपनाने का हुक्म दिया है।" (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-29)

अल्लामा अबू-इसहाक़ शातिबी (मृ॰ 790 हिजरी) ने इस्लामी शरीअत के एतिदाल (सन्तुलन) की हिकमत की व्याख्या करते हुए लिखा है—

"इस्लामी शरीअत अपनी फ़ितरी माँगों के अनुसार एतिदाल पर क़ायम है। वह दोनों पहलुओं को इनसाफ़ के साथ लेती है। उन्हीं चीज़ों का हुक्म देती है जिनको इनसान बिगाड़ और मशक़्क़त के बिना पूरा कर सकता है, बल्कि वह ऐसी सन्तुलित है कि अपने तमाम माननेवालों से सन्तुलन चाहती है, मिसाल के तौर पर नमाज़, हज और ज़कात वग़ैरा। हालाँकि शरीअत के अहकाम उसके माननेवालों के मुँह फेर लेने या बीच की राह से हट जाने के अन्देशे की वजह से बनाए जाते हैं, मगर यह क़ानून बनाना अस्ल में सन्तुलित राह पर लाने के लिए होता है और ऐसे तरीक़े पर बनाया जाता है कि सन्तुलन पैदा हो जाए, जिस तरह एक हमदर्द डॉक्टर मरीज़ के साथ बरताव करता है कि वह रोगी का हाल, स्वभाव, रोग के बढ़ने-घटने को देखकर उसके लिए सहनीय और लाभदायक दवाएँ और खाने की चीज़ें सुनिश्चित करता है, और जब रोगी की सेहत अच्छी हो जाती है तो उसके लिए ऐसी ग़िज़ा (भोजन) सुनिश्चित करता है जो सभी हालतों में उसके लिए उचित हो।"

(अल-मुवाफ़िक़ात-2/163)

यह सवाल पैदा हो सकता है कि अगर इस्लाम का मिज़ाज बीच की राह अपनानेवाला यानी एतिदालपसन्द है तो कुछ मामलों में सख़्ती का आदेश क्यों देता है? मिसाल के तौर पर नबी (सल्ल॰) कहते हैं—

"मेरा जी चाहता है कि किसी शख़्स को नमाज़ पढ़ाने का हुक्म दूँ फिर मैं ख़ुद जाकर उन लोगों के घरों में आग लगा दूँ जो जमाअत में शामिल होने के बजाय अपने घरों में नमाज़ पढ़ लेते हैं।"

(हदीस : मुस्लिम)

इसी प्रकार नबी (सल्ल॰) दूसरी जगह फ़रमाते हैं—

"जिस आदमी ने अल्लाह के साथ किसी को साझी न ठहराया वह जन्नत में जाएगा, चाहे वह ज़िना (व्यभिचार) करे और चोरी करे।"

(हदीस : बुख़ारी)

इसी प्रकार और बहुत-से शरीअत के हुक्म और फ़रमान मिलते हैं जिनमें ज़ाहिरी तौर पर एक सीमा की बात महसूस होती है और कभी उसके विपरीत दूसरी सीमा की और कभी सख़्ती तो कभी हद से अधिक नरमी नज़र आती है।

इस बारे में एक बात तो यह जानने की है कि इस तरह के हुक्म व फ़रमानों का एक ख़ास पसे-मंज़र (सन्दभ) होता है जिसमें उस सख़्त या नर्म फ़रमान व अमल की वजह छिपी होती है और वह उस फ़रमान या अमल को सन्तुलित बना देती है। मिसाल के तौर पर जमाअत छोड़नेवाली हदीस का पसे-मंज़र यह है कि मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) लोग इस्लाम का ज़बान से इज़हार करते थे और जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ने से बचते थे, ताकि अलग नमाज़ पढ़ने के बहाने इस्लाम और मुसलमानों के ख़िलाफ़ साज़िश कर सकें। मुसलमानों को इसी रवैये से बचाने और संगठित रहने और भाईचारे का माहौल पैदा करने के लिए नबी (सल्ल॰) ने यह फ़रमाया। इसी तरह कलिमा 'ला इला-ह इल्लल्लाहु (नहीं है कोई पूज्य-प्रभु सिवाय अल्लाह के) यानी ईमान को नजात (मुक्ति) की बुनियाद बताने के लिए नबी (सल्ल॰) ने दूसरी हदीस बयान की उसमें अनैतिक कर्मों की ख़राबी पर वार्ता करना मक़सद नहीं, बल्कि मक़सद ईमान की महत्ता बताना है। दूसरी उसूली बात वह है जिसकी तरफ़ अल्लामा शातिबी (रह॰) ने इशारा किया है, वे लिखते हैं–

> "जब तुम शरीअत के उसूल पर सोच-विचार करोगे तो तुम पाओगे कि उसमें सन्तुलन पाया जाता है और अगर तुम उसे किसी एक सीमा की तरफ़ झुका हुआ देखो तो समझ लो कि यह दूसरी तरफ़ मौजूद या उम्मीद की गई सीमा के मुक़ाबले में है। चुनाँचे सख़्ती का पहलू जो आमतौर पर सचेत करने या डराने के सिलसिले में होता है, उन लोगों के मुक़ाबले में पेश किया जाता है जिन पर दीन में बिगाड़ और सुस्ती का ग़लबा हो गया हो और कमी या घटाने का पहलू जो आमतौर पर शौक़, छूट और उम्मीद के मुक़ाबले में होता है, उन लोगों के मुक़ाबले में आता है जिन पर सख़्ती और हरज का

ग़लबा होता है।" (अल-मुवाफ़िक़ात-2/167)

बुनियादी बात यह है कि इनसान के अन्दर बहुत-सी इच्छाएँ और माँगें क़ुदरत ने रखे हैं, मिसाल के तौर पर रूह (आत्मा) और शरीर की माँगें, दीन-दुनिया के तक़ाज़े, इबादत और आराम-चैन की माँगें, रिश्तों और सम्बन्धों की माँगें, हक़ और कर्तव्यों की माँगें आदि। इन माँगों में सन्तुलन और तवाज़ुन बनाए रखने के लिए शरीअत ने कुछ नियम, क़ायदे और सीमाएँ मुक़र्रर की हैं, जिनकी पाबन्दी करना फ़ितरत की सलामती का ध्यान रखना है। इसी तवाज़ुन को बनाए रखने के लिए शरीअत ज़रूरत के मुताबिक़ कुछ हुक्मों में कमी और आसानी भी कर देती है। रमज़ान के रोज़ों में मुसाफ़िर, रोगी, और बूढ़े लोगों के लिए दी गई छूट इसकी सबसे अच्छी मिसाल है।

ज़िन्दगी के मक़सद में सन्तुलन

यूँ तो मानव-जीवन में असन्तुलन के अनगिनत प्रदर्शन हैं, मगर पहला असन्तुलन ख़ुद जीवन के बारे में इनसानों के अक़ीदे और दृष्टिकोण में होता है। इनसान क्या है? सृष्टि की रचना किस लिए की गई? इन सबका बनानेवाला कौन है? अल्लाह और कायनात से इनसान का क्या सम्बन्ध है? क्या वह आज़ाद है या किसी का ग़ुलाम है? इन सभी सवालों को हल करने के सिलसिले में इनसानों ने जो असन्तुलन अपनाए हैं वह मानव इतिहास का दुखद अध्याय है।

हम देखते हैं कि एक गरोह ने इनसानों को इतना गिरा हुआ और तुच्छ बना दिया कि पेड़-पौधे, पत्थर, जानवर, साँप, बिच्छू बल्कि इनसे भी कमतर चीज़ों के आगे सिर झुकाने लगा, यहाँ तक कि मल-मूत्र तक को पवित्र और इबादत के लायक़ समझने लगा। दूसरी तरफ़ कुछ लोगों ने इनसानों को इतना बाग़ी, घमण्डी और आज़ाद बना दिया कि वे वास्तविक पूज्य प्रभु का इनकार करके ख़ुद ख़ुदा होने के मक़ाम पर जा बैठे, उन्होंने अपने ही जैसे दूसरे इनसानों की गर्दन में ग़ुलामी का तौक़ (फँदा) डाल दिया और उनको अपने आगे सिर झुकाने और माथा टेकने पर मजबूर कर दिया। एक शायर

(कवि) ने इनसानों की इस इन्तिहापसन्दी को इस तरह बयान किया है—

ख़ातिर में भी ख़ुदा को न लाए यह आदमी।
आए नवाज़ने पे तो बुत को ख़ुदा कहे॥

इस्लाम ने इन्तिहापसन्दी की इस दलदल से इनसान को निकाला और बताया कि न तो वह हर एक का महकूम (शासित) और गुलाम है और न ही ऐसा है कि उसको सजदा किया जाए और न ही वह किसी का माबूद (पूज्य प्रभु) है बल्कि वह सिर्फ़ एक अल्लाह का बन्दा है और दुनिया की हर चीज़ उसके अधीन और इताअत करनेवाली है। यानी दुनिया इनसान के लिए और इनसान सिर्फ़ अल्लाह के लिए बनाया गया है—

"और रात-दिन और सूरज-चाँद अल्लाह की निशानियों में से हैं। तुम लोग न तो सूरज को सजदा करो और न चाँद को, बल्कि अल्लाह ही को सजदा करो जिसने इन चीज़ों को पैदा किया है, अगर तुम उसी की बन्दगी करनेवाले हो।"

(क़ुरआन, सूरा-41 हा-मीम-सजदा, आयत-37)

सोच-विचार करे इनसान कि अल्लाह ने उसे मिट्टी के गारे, वीर्य की बूँद, जमे हुए ख़ून और गोश्त के लोथड़े से चरणबद्ध ढंग से पैदा किया। यही उसकी सच्चाई है, फिर अल्लाह ने उसे मान-सम्मान और ऊँचा दर्जा प्रदान किया, उसको अपना प्रतिबिम्ब और मरज़ी अता की और उसे ज़मीन में ख़लीफ़ा (नायब) बनाया। यह उसकी हैसियत है। अगर इन दोनों पहलुओं पर इनसान ग़ौर करे तो कभी घमण्डी और अभिमानी नहीं हो सकता और न कभी रुसवा हो सकता है, बल्कि सन्तुलन के कमाल को पा सकता है। अल्लाह सवाल करता है—

"ऐ इनसान! किस चीज़ ने तुझे अपने पालनहार प्रभु की तरफ़ से धोखे में डाल दिया, जिसने तुझे पैदा किया, तुझे निक-सुक से दुरुस्त किया, तुझे सन्तुलित बनाया और जिस ढंग से चाहा तुझको जोड़कर तैयार किया। हरगिज़ नहीं, बल्कि तुम लोग अच्छे बदले और सज़ा को झुठलाते हो।" (क़ुरआन, सूरा-82 इन्फ़ितार, आयतें-6,9)

पैग़म्बर (सल्ल॰) से मुहब्बत में सन्तुलन

अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) की मुहब्बत हर मुसलमान पर वाजिब है, और यह मुहब्बत ईमान और अक़ीदे (आस्था) की पहचान है। नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है–

> "तुममें से कोई व्यक्ति, मोमिन उस समय तक नहीं हो सकता जब तक कि मैं उसको माँ-बाप, औलाद और सभी व्यक्तियों से ज़्यादा प्रिय न हो जाऊँ।" (हदीस : बुख़ारी)

यह मुहब्बत भी सन्तुलन का तक़ाज़ा करती है। प्रथम यह है कि मुहब्बत के साथ उनकी बातों पर भी अमल होना चाहिए यानी ज़बानी मुहब्बत का दावा काफ़ी नहीं, बल्कि अमल से इसकी पुष्टि और गवाही भी देना चाहिए। दूसरे यह कि मुहब्बत में इतना ग़ुलू नहीं करना चाहिए कि रसूल को रिसालत (पैग़म्बरी) के पद से बढ़ाकर ख़ुदाई के स्थान पर पहुँचा दिया जाए। जिस तरह दूसरी क़ौमों ने अपने रसूलों के सिलसिले में ग़ुलू से काम लिया। चुनाँचे इसी असन्तुलन से अपनी उम्मत को महफ़ूज़ रखने के लिए नबी (सल्ल॰) ने ताकीद की है।

> "तुम लोग मेरे सिलसिले में अतिश्योक्ति (ग़ुलू) न करना जिस तरह ईसाइयों ने मरयम के बेटे ईसा (अलैहि॰) के बारे में अतिश्योक्ति से काम लिया है।" (हदीस : बुख़ारी)

ईसा (अलैहि॰) को ईसाइयों ने पैग़म्बरी के मक़ाम से बुलन्द करके ख़ुदा का बेटा और ख़ुदाई में शामिल और साझीदार बना दिया। मुसलमानों को इस प्रकार के मुबालग़े (अतिश्योक्ति) से बचने की ताकीद की गई है।

आर्थिक जीवन में सन्तुलन

इन्तिहापसन्दी और बेएतिदाली (असन्तुलन) का बड़ा प्रदर्शन इनसान आजीविका एवं आर्थिक जीवन में करता है। यानी ज़िन्दगी गुज़ारने के तरीक़े और उसे बरतने में कभी एक सीमा को पहुँच जाता है और कभी उसके विपरीत दूसरी सीमा को। कुछ लोगों ने माल-दौलत, राहत-चैन और ऐशो-आराम के संसाधनों, दुनिया की लज़्ज़तों और बेलगाम ख़ाहिशों की

पूर्ति ही को अपने जीवन का लक्ष्य समझ लिया और धन-दौलत और सांसारिक संसाधनों की मानो पूजा करने लगे, जबकि दूसरे लोगों ने संसार के त्याग को अपने जीवन का लक्ष्य ठहराकर संन्यास का जीवन अपना लिया। क़ुरआन मजीद ने दोनों को नकार दिया है—

"लोगों के लिए रुचिकर चीज़ें, औरतें, सन्तान, सोने-चाँदी के ढेर, चुने हुए घोड़े, मवेशी और खेती की ज़मीन बड़ी शोभायमान बना दी गई हैं, मगर ये सब दुनिया की कुछ दिनों की ज़िन्दगी के सामान हैं, और अल्लाह ही के पास बेहतरीन ठिकाना है।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-14)

इस आयत में धन-दौलत और सांसारिक संसाधनों की हैसियत बताई गई है। इनकी ख़ुदाई को नकारा गया और इनकी मुहब्बत को नुक़सान देनेवाला बताया गया है। यानी भौतिक चीज़ों पर भारी चोट लगाई गई है, दूसरी तरफ़ जिन लोगों ने सांसारिक संसाधनों को बिलकुल ही नकार दिया, संसार से मुँह मोड़कर वैरागी जीवन और संन्यास अपना लिया और संसार-त्याग और संन्यासी जीवन की शिक्षा देने लगे, इस्लाम ने इनको भी तंबीह की और सुधार के क़ाबिल बताया—

"और संन्यास उन्होंने ख़ुद गढ़ लिया, हमने उसे उनपर फ़र्ज़ नहीं किया था, मगर अल्लाह की प्रसन्नता की चाह में उन्होंने ख़ुद ही यह बिदअत निकाली और फिर इसकी पाबन्दी करने का जो हक़ था अदा न किया।" (क़ुरआन, सूरा-57 हदीद, आयत-27)

संसार-त्याग, चाहे अल्लाह ही के लिए हो और अल्लाह ही के नाम पर क्यों न हो इस आयत में उसका रद्द किया गया है। इस तरह इस्लाम ने न तो संन्यास की शिक्षा दी है और न भौतिकवादी होने का पाठ पढ़ाया बल्कि उसने भौतिकता और संन्यास की दो परस्पर विपरीत सीमाओं के बीच से मानव-जीवन के लिए सन्तुलन का रास्ता निकाला। लोगों के निर्माण, भलाई और उन्नति के लिए इससे अधिक मुनासिब और फ़ायदेमन्द नुस्ख़ा और कोई फ़ार्मूला नहीं खोजा जा सकता। इस्लाम ने भौतिकता और आध्यात्मिकता के मध्य सन्तुलन स्थापित किया। क़ारून जो धन-दौलत का पुजारी था उसे

भी हुक्म दिया गया था—

"जो माल अल्लाह ने तुझे दिया है उससे परलोक का घर बनाने की चिन्ता कर और दुनिया में से भी अपना हिस्सा न भूल।"

(क़ुरआन, सूरा-28 क़सस, आयत-77)

दीन (धर्म) और दुनिया दोनों इनसान के लिए हैं, इसी लिए तो अल्लाह ने अपने बन्दों को दीन-दुनिया दोनों का सौभाग्य प्राप्त करने की दुआ सिखाई है—

"ऐ हमारे रब! हमें दुनिया में भी भलाई दे और आख़िरत (परलोक) में भी भलाई दे और हमें जहन्नम की यातना से बचा ले।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-201)

दीन और दुनिया दोनों का सौभाग्य माँगने की शिक्षा इस्लाम की सन्तुलित और मिसाली शिक्षा है। इसी लिए प्यारे नबी (सल्ल०) ने जो दुआ फ़रमाई वह भी इसी की व्याख्या करती है—

"ऐ अल्लाह! मेरे लिए मेरे दीन की दुरुस्ती कर जो कि मेरे मामले की सुरक्षा है और मेरी दुनिया का सुधार कर जिसमें मेरे जीवन की आजीविका है और मेरे परलोक की बेहतरी कर जिसमें मेरा ठिकाना है।" (हदीस : मुस्लिम)

दीन का रास्ता दुनिया से गुज़रता है, जो आदमी दुनिया को छोड़ देता है वह मानो दीन को भी छोड़ देता है और जो आदमी दुनिया ही को पकड़ लेता है उसके हाथ से दीन ज़ाता रहता है। हज़रत अम्र-बिन-आस (रज़ि०) कहते हैं कि एक बार नबी (सल्ल०) ने मुझे बुला भेजा और हुक्म दिया कि मैं अपने कपड़े और हथियार के साथ हाज़िर हूँ। इसलिए मैंने आदेश का पालन किया और जब पहुँचा तो आप (सल्ल०) वुज़ू कर रहे थे। नबी (सल्ल०) ने नज़र उठाकर मुझे देखा फिर नज़र झुका ली और कहा, "ऐ अम्र! मैं तुमको एक लश्कर का कमांडर बनाकर भेजना चाहता हूँ ताकि अल्लाह तुमको माले-ग़नीमत (युद्ध में प्राप्त विरोधी दल का माल) प्रदान करे और मैं तुम्हारे लिए अच्छे माल की इच्छा रखता हूँ। "मैंने कहा," मैं धन-दौलत की

इच्छा के कारण इस्लाम नहीं लाया, बल्कि मैं इस्लाम की चाह में मुसलमान हुआ हूँ ताकि अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल०) का साथ नसीब हो।" तो फिर अल्लाह के नबी (सल्ल०) ने कहा, "अच्छा माल तो अच्छे आदमी के लिए ही होता है।" (अल-अदबुलमुफ़रद)

अल्लाह ने इनसान की फ़ितरत में भौतिकता और आध्यात्मिकता दोनों का मिश्रित रूप रखा है, इन दोनों में परस्पर समरूपता ज़रूरी है और यह उसी वक़्त हो सकता है जब इनसान इन दोनों के तक़ाज़े सन्तुलन के साथ पूरे करे। भौतिक वस्तु रास्ता है और आध्यात्मिकता मंज़िल है। मंज़िल तक पहुँचने के लिए रास्ते को अपनाना ज़रूरी है, मगर रास्ते ही में खो जाना और मंज़िल को भूल जाना बेवक़ूफ़ी और नादानी है।

हलाल और हराम में सन्तुलन

माद्दियत (भौतिकता) और रूहानियत में सन्तुलन बिगड़ने के कारण ही इनसान के अन्दर हलाल (वैध) चीज़ों को हराम और हराम (अवैध) चीज़ों को हलाल करने का रुझान पैदा हुआ और इनसान हराम व हलाल के बारे में खुद ही मनचाहे क़ानून बनाने लगा। जिस चीज़ को चाहा हराम कर लिया और जिसे चाहा हलाल। यहाँ भी उसे इस्लाम सन्तुलन यानी एतिदाल का रास्ता दिखाता है। इस्लाम यह बताता है कि न तो दुनिया की हर चीज़ इनसान के लिए फ़ायदेमन्द और हलाल है और न सारी चीज़ें नुक़सानदेह और हराम हैं, बल्कि बहुत-सी चीज़ें हलाल और फ़ायदेमन्द हैं और कुछ दूसरी चीज़ें हराम और नुक़सानदेह भी हैं, इसलिए अल्लाह की हलाल की हुई चीज़ों को हराम न किया जाए और न उसकी हराम की हुई चीज़ों को हलाल किया जाए। क्योंकि हलाल और हराम करने का हक़ इनसान को नहीं बल्कि सिर्फ़ अल्लाह को है। क़ुरआन कहता है—

> "और तुम्हारी ज़बानें जो झूठे हुक्म लगाया करती हैं कि ये चीज़ें हलाल हैं और ये हराम, तो इस तरह के हुक्म लगाकर अल्लाह पर झूठ न बाँधो।" (क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, आयत-116)

अल्लाह अपने बन्दों को हराम-हलाल करने में सन्तुलन अपनाने की शिक्षा देते हुए कहता है—

"ऐ ईमानवालो! अल्लाह ने जो पाक चीज़ें तुम्हारे लिए हलाल की हैं, उनको हराम न कर लो और हद से आगे न बढ़ो। अल्लाह ज़्यादती करनेवालों को पसन्द नहीं करता। जो कुछ हलाल और पाकीज़ा रोज़ी अल्लाह ने तुम्हें दी है उसे खाओ-पिओ और उस अल्लाह की नाफ़रमानी से बचते रहो जिसपर तुम ईमान लाए हो।"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयतें-87,88)

अल्लामा शब्बीर अहमद उसमानी (रह०) ने 'अल्लाह ज़्यादती करनेवालों को पसन्द नहीं करता' की व्याख्या करते हुए लिखा है—

"ज़्यादती के दो मतलब हो सकते हैं, हलाल चीज़ों के साथ हराम जैसा मामला करने लगें और ईसाइयों की तरह रहबानियत (संसार-त्याग) को अपना लें या लज़ीज़ और पाक चीज़ों से फ़ायदा उठाने में हद से आगे बढ़ जाएँ, यहाँ तक कि मौज-मस्ती और अश्लीलता में संलिप्त होकर यहूदियों की तरह दुनिया की ज़िन्दगी को अपना मक़सद बना लें। मतलब यह कि अति और ज़्यादती और कम-ज़्यादा करने के बीच सन्तुलन और तवाज़ुन का रास्ता अपनाना चाहिए।"

(क़ुरआन, अनुवाद : महमूद हसन, सूरा-5 माइदा, आयत-87 का हाशिया)

क़ुरआन यह भी कहता है—

"(ऐ नबी!) उनसे कहो, किसने अल्लाह की उस ज़ीनत (शोभा) को हराम कर दिया जिसे अल्लाह ने अपने बन्दों के लिए पैदा किया था और किसने अल्लाह की दी हुई पाक चीज़ें अवैध कर दीं? कहो ये सारी चीज़ें दुनिया की ज़िन्दगी में भी ईमानवालों के लिए हैं और क़ियामत के दिन तो ख़ास तौर से उन्हीं के लिए होंगी।"

(क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-32)

अल्लाह ने न सिर्फ़ आम लोगों को यह हक़ नहीं दिया कि वे उसकी हलाल की हुई चीज़ों को हराम या हराम की हुई चीज़ों को हलाल ठहराएँ बल्कि वह यह हक़ पैग़म्बरों को भी नहीं देता। जैसा कि नबी (सल्ल०) से फ़रमाया गया—

"ऐ नबी! तुम क्यों उस चीज़ को हराम करते हो जिसे अल्लाह ने तुम्हारे लिए हलाल किया है।" (क़ुरआन, सूरा-66 तहरीम, आयत-1)

एक दिन सहाबा (रज़ि०) ने सब्ज़ी के साथ प्याज़ भी बहुत ज़्यादा खाई, प्याज़ खाकर मस्जिद में गए तो उनके मुँह से प्याज़ की गंध आ रही थी उस मौक़े पर अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल०) ने कहा कि जो आदमी इस सब्ज़ी (यानी प्याज़) को खाए वह हमारी मस्जिद में न आए। यह सुनकर सहाबा किराम ने आपस में कहना शुरू कर दिया कि अब प्याज़ भी हराम हो गई। जब प्यारे नबी (सल्ल०) को यह बात मालूम हुई तो कहा–

"ऐ लोगो! अल्लाह ने जिस चीज़ को हलाल किया है उसे हराम करने का मुझे कोई हक़ नहीं है, मगर यह ऐसा पौधा है जिसकी गंध मुझे नापसन्द है। (हदीस : मुसनद अहमद)

इस्लाम इस बात की भी इजाज़त नहीं देता कि हराम चीज़ों को हलाल कर लिया जाए, इसी लिए अल्लाह हुक्म देता है–

"ऐ ईमानवालो, ख़ुदापरस्ती की निशानियों का अनादर न करो, हरामवाले महीनों में से किसी को हलाल न कर लो, क़ुरबानी के जानवरों पर हाथ न डालो और उन जानवरों पर हाथ न डालो जिनकी गर्दनों में ख़ुदा के लिए नज़्र की निशानी के पट्टे पड़े हों, न उन लोगों छेड़ो जो अपने रब के फ़ज़्ल और उसकी ख़ुशी की तलाश में 'काबा' की तरफ़ जा रहे हों।"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-2)

मौलाना हमीदुद्दीन फ़राही (रह०) ने सूरा-66 तहरीम की उक्त आयत की व्याख्या करते हुए लिखा है–

"हलाल को हराम करना और हराम को हलाल करना दोनों एक समान जुर्म हैं और दोनों गुमराही और हद को तोड़ने के हुक्म में दाख़िल हैं। बस फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि हराम को हलाल करना फ़िस्क़ (नाफ़रमानी) है जो आदमी की अपनी बुरी ख़ाहिश और सरकशी से पैदा होता है और हलाल को हराम करना रहबानियत

(संन्यास) है जिसका स्रोत अज्ञानता और बेवक़ूफ़ी है।"

(तफ़्सीर निज़ामुल-क़ुरआन, पेज-165)

ख़र्च में सन्तुलन

इनसान माल-दौलत ख़र्च करने के सिलसिले में भी इन्तिहापसन्दी दिखाता है। कभी वह इतना अधिक बेजा और अनावश्यक ख़र्च करता है कि शैतान को भी शर्मा देता है और कभी इतनी कंजूसी से काम लेता है कि क़ारून की पैरवी करने लगता है। इस्लाम इन दोनों आचरणों को असन्तुलन और इन्तिहापसन्दी का नाम देता है कि एक तरफ़ फ़ुज़ूलख़र्ची पर पाबन्दी लगाने के लिए कहता है–

"रिश्तेदार को उसका हक़ दो और मिसकीन (मुहताज) और मुसाफ़िर को उसका हक़, और फ़ुज़ूलख़र्ची न करो, फ़ुज़ूलख़र्च लोग शैतान के भाई हैं और शैतान अपने रब का नाशुक्रा है।"

(क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयतें-26,27)

और आगे क़ुरआन कहता है–

"और बेजा ख़र्च न करो क्योंकि अल्लाह बेजा ख़र्च करनेवालों को पसन्द नहीं करता।" (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-141)

दूसरी तरफ़ वह बुख़्ल और कंजूसी की निन्दा करते हुए कहता है–

"जिन लोगों को अल्लाह ने अपने फ़ज़्ल (अनुग्रह) से नवाज़ा है और फिर वे कंजूसी से काम लेते हैं वे इस ख़याल में न रहें कि यह कंजूसी उनके लिए अच्छी है, बल्कि उनके हक़ में निहायत बुरी है, जो कुछ वे अपनी कंजूसी से जमा कर रहे हैं, वही क़ियामत के दिन उनके गले का तौक़ बन जाएगा।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-180)

इसके बाद वह एक सन्तुलित और तवाज़ुन भरे रवैये की शिक्षा देता है और कहता है–

"न तो अपना हाथ गर्दन से बाँधकर रखो और न उसे बिलकुल ही

खुला छोड़ दो कि निन्दित और बेबस बनकर रह जाओ। तेरा रब जिसके लिए चाहता है रोज़ी तंग कर देता है। वह अपने बन्दों के हाल से बाख़बर है और उन्हें देख रहा है।"

(क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-29,30)

यहाँ हाथ बाँधने से मुराद बुख़्ल और कंजूसी है और खुला हाथ छोड़ने से मुराद फ़ुज़ूलख़र्ची है। मौलाना मौदूदी (रह०) इसकी व्याख्या में लिखते हैं–

"लोगों में इतना सन्तुलन और तवाज़ुन होना चाहिए कि वे न तो कंजूस बनकर दौलत की गर्दिश (गतिशीलता) को रोकें और न फ़ुज़ूलख़र्च बनकर अपनी दौलत की ताक़त (आर्थिक शक्ति) को बरबाद करें, इसके विपरीत उनके अन्दर तवाज़ुन की ऐसी सही समझ मौजूद होनी चाहिए कि वे ज़रूरी ख़र्च से भी रुके न रहें और बेजा ख़र्च की ख़राबियों में भी न पड़ें।"

(तफ़हीमुल-क़ुरआन-2/611)

अल्लाह सच्चा और मुकम्मल ईमानवाला उस बन्दे को कहता है जो अपनी आर्थिक ज़िन्दगी को सन्तुलन और तवाज़ुन पर क़ायम रखता है। वह ऐसे बन्दे की तारीफ़ करता है–

"जब वे ख़र्च करते हैं तो न फ़ुज़ूलख़र्ची करते हैं और न कंजूसी, बल्कि उनका ख़र्च दोनों इन्तिहाओं के बीच सन्तुलन पर होता है।"

(क़ुरआन, सूरा-25 फ़ुरक़ान, आयत-67)

सदक़ा (दान) एक बड़ी इबादत है। सदक़ा करके इनसान न केवल अपने माल को पाक करता है, बल्कि अल्लाह की नाराज़ी से भी बचा रहता है। मगर फ़र्ज़ (अनिवार्य) सदक़ा (ज़कात) सिर्फ़ ढाई प्रतिशत और नफ़्ल सदक़ा तौफ़ीक़ (सामर्थ्य) के मुताबिक़ है। जिस तरह यह जाइज़ नहीं कि इनसान माल-दौलत पर साँप बनकर बैठ जाए और कुछ भी ख़र्च न करे, उसी तरह यह भी मुनासिब नहीं है कि ख़ुदा का दिया हुआ सब कुछ ख़ुदा के रास्ते में लुटा दे और ख़ुद मजबूर-लाचार बनकर बैठ जाए और इसे ख़ुदा पर भरोसे का नाम दे दे। ख़ास तौर पर ऐसी हालत में कि उसके माल-दौलत

के साथ उसके बाल-बच्चों और नाते-रिश्तेदारों का हक़ जुड़ा हुआ हो।

एक बार हज़रत साद-बिन-अबी-वक़्क़ास (रज़ि॰) बीमार हुए तो प्यारे नबी (सल्ल॰) उनकी इयादत के लिए उनके घर गए। उस वक़्त हज़रत साद (रज़ि॰) ने यह सोचकर कि उनकी एक बेटी के सिवा कोई और वारिस नहीं है, इसलिए अपना सारा माल और सामान ख़ुदा की राह में ख़र्च करने का इरादा किया, तो प्यारे नबी (सल्ल॰) ने उनको ऐसा करने से रोक दिया और सिर्फ़ एक तिहाई माल अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने की वसीयत का हुक्म दिया और कहा–

"एक तिहाई भी बहुत है, तुम अपने वारिसों को मालदार छोड़कर जाओ यह उससे बेहतर है कि तुम उनको नादार या ग़रीब छोड़ो और वे लोगों के आगे हाथ फैलाएँ।" (हदीस : अबू-दाऊद)

हज़रत काब-बिन-मालिक (रज़ि॰) के तबूक की लड़ाई में पीछे रह जाने के कारण अल्लाह और उसके पैग़म्बर (सल्ल॰) नाराज़ हो गए तो उन्होंने लगातार तौबा की, जब उनकी तौबा अल्लाह ने क़बूल कर ली तो उन्होंने नबी (सल्ल॰) से कहा कि मैं अपनी तौबा क़बूल होने की ख़ुशी में अपना पूरा माल अल्लाह और उसके पैग़म्बर (सल्ल॰) की ख़ुशी के लिए सदक़ा करना चाहता हूँ तो आप (सल्ल॰) ने कहा–

"यह तुम्हारे लिए बेहतर है कि कुछ माल अपने पास रखो।"

(हदीस : बुख़ारी)

मालूम यह हुआ कि इनसान को कंजूसी और बेजा ख़र्च दोनों की ख़राबियों से अपने को सुरक्षित रखना चाहिए और मालदारी व नादारी में सन्तुलन रखना चाहिए ताकि जीवन का सच्चा सुख उसे हासिल हो सके।

सामाजिक जीवन में सन्तुलन

सामाजिक जीवन में असन्तुलन का प्रदर्शन बहुत-से मौक़ों पर होता है। मिसाल के तौर पर मानवाधिकारों की अदाइगी का मामला लीजिए। अल्लाह ने माँ-बाप और बाल-बच्चों की ज़िम्मेदारी समान रूप से इनसान पर डाली है। जैसा कि हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) से रिवायत है–

"जिस तरह तुम्हारे बाप का तुम्हारे ऊपर हक़ है उसी तरह तुम्हारी सन्तान का भी तुम्हारे ऊपर हक़ है।" (अल-अदबुल-मुफ़रद)

लेकिन इनसान कभी तो माँ-बाप का इतना लिहाज़ करता है कि बाल-बच्चों के अधिकारों से लापरवाह हो जाता है और कभी बाल-बच्चों में इतना मग्न हो जाता है कि माँ-बाप की परेशानियों और तकलीफ़ों से आँखें बन्द कर लेता है, जबकि सन्तुलन का रास्ता यह है कि वह दोनों के हक़ों का ख़याल रखे, इसी लिए तो क़ुरआन कहता है–

"तुम नहीं जानते कि तुम्हारे माँ-बाप और तुम्हारी सन्तान में से कौन फ़ायदे के लिहाज़ से तुमसे अधिक क़रीब है।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-11)

और इसी लिए ख़ुदा अपने बन्दों को सन्तान के बारे में यह दुआ माँगने की तालीम देता है–

"ऐ हमारे रब! हमें अपनी बीवियों और अपनी औलाद से आँखों की ठंडक दे और हमें परहेज़गारों का इमाम बना।"

(क़ुरआन, सूरा-25 फ़ुरक़ान, आयत-74)

इसी के साथ माँ-बाप के बारे में यह हुक्म देता है–

"माँ-बाप के साथ अच्छा बरताव करो, अगर तुम्हारे पास उनमें से कोई एक या दोनों बूढ़े होकर रहें तो उन्हें उफ़ तक न कहो, न उन्हें झिड़ककर जवाब दो, बल्कि उनसे आदर से बात करो और नरमी और दयालुता के साथ उनके सामने झुककर रहो और दुआ किया करो कि ऐ हमारे रब! इनपर रहम कर जिस तरह इन्होंने प्रेम-भाव के साथ मुझे बचपन में पाला था।"

(क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयतें-23,24)

मालदारों और ग़रीबों में सन्तुलन

समाज में सब लोग सामाजिक और आर्थिक लिहाज़ से एक समान नहीं होते। उनमें दरजा और हैसियत और अमीरी और ग़रीबी का फ़र्क़ होता है। बहुत-से लोग मालदार होते हैं तो बहुत-से ग़रीब और निर्धन भी होते हैं।

बहुत-से महलों में ठाठ-बाट से रहते हैं तो बहुत-से फ़ुटपाथ पर पड़े होते हैं। अमीरी और ग़रीबी में फ़र्क़ विरासत, अक़्लमन्दी, योग्यता, पद, मेहनत और मौक़े जैसे बहुत-से कारणों से होता है। यह तो संभव नहीं है कि सब लोग एक दरजे के मालदार हो जाएँ या सब लोग एक तरह के ग़रीब हो जाएँ। मालदारी और नादारी का फ़र्क़ किसी-न-किसी हद तक बाक़ी रहेगा, लेकिन इस फ़र्क़ को कम करके सामाजिक असमानता को दूर किया जा सकता है और सन्तुलन और तवाज़ुन पैदा किया जा सकता है। अगर कुछ लोग अपनी ग़रीबी और निर्धनता की वजह से परेशान हाल रहें और ज़िन्दगी के ज़रूरी सामानों के मुहताज रहें तो उनकी परेशानी मालदार लोगों के लिए भी तकलीफ़ और कष्ट का कारण बन सकती है, उनके ख़िलाफ़ हसद, जलन, नफ़रत और दुश्मनी की भावना पैदा कर सकती है और उनको नुक़सान पहुँचाने के मौक़े दे सकती है। इससे समाज में फ़ित्ना-फ़साद और बदअमनी पैदा हो सकती है, सुख-चैन बरबाद हो सकता है।

इसी वजह से इस्लाम ने एक तरफ़ तो पड़ोसियों का हक़ अदा करने और उनकी मदद करने और उनकी ख़िदमत करने पर बड़ा ज़ोर दिया है।

अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) का फ़रमान है—

"जिबूरील (अलैहि॰) पड़ोसियों का ख़याल रखने की मुझे इस हद तक ताकीद करते रहे कि मैंने गुमान किया कि कहीं उनको विरासत में हक़दार न बना दें।" (हदीस : तिरमिज़ी)

दूसरी तरफ़ मालदारों पर यह ज़िम्मेदारी डाली है कि अपनी ज़रूरत से बची हुई आमदनी का ढाई प्रतिशत हिस्सा निकालकर ग़रीबों, मुहताजों और नादारों में बाँट दें। इससे फ़ायदा यह होगा कि दौलत इस तरह नहीं बढ़ेगी कि अमीर तो और अमीर हो और ग़रीब और अधिक ग़रीब होता जाए। क़ुरआन मजीद ने इसे इस तरह समझाया है—

"ताकि दौलत तुम्हारे मालदारों के बीच में ही सिमटकर न रह जाए।" (क़ुरआन, सूरा-59 हश्र, आयत-7)

इसका दूसरा बड़ा फ़ायदा यह होगा कि ग़रीबों, मुहताजों की ज़रूरत पूरी होगी, उनका सामाजिक स्तर ऊँचा होगा, उनमें मालदारों के विरुद्ध हसद,

जलन, नफ़रत और दुश्मनी की भावना पैदा नहीं होगी, बल्कि वे मालदारों से अच्छी उम्मीदें और अच्छे ताल्लुक़ात रखेंगे। इस तरह एक सन्तुलित समाज का बनना संभव हो सकेगा और हर गरोह सुख-चैन से जी सकेगा।

व्यक्तिकता और सामूहिकता में सन्तुलन

असन्तुलन व्यक्तिकता और सामूहिकता के मामलों में भी बहुत होता है। समाज में बहुत-से ऐसे लोग मिलते हैं जो केवल अपने-आप ही में गुम रहते हैं और अपने ही काम से सरोकार रखते हैं, उनको दूसरों के सुख-दुख, लाभ-हानि से कोई मतलब नहीं होता, वे न तो दूसरों की उलझनों और परेशानियों का एहसास करते हैं और न समाज में बिगाड़, अत्याचार, दुराचार और ख़राबियों के सुधार की ओर ध्यान देते हैं। उनका यह रवैया असन्तुलित और समाज के लिए भी नुक़सानदेह है। किसी सूफ़ी सन्त ने कहा है–

यह ख़ुदपरस्ती भी क्या कम है बुतपरस्ती से।
हर एक शख़्स मुक़य्यद-सा अपनी ज़ात में है॥

अल्लाह ऐसे लोगों को चेतावनी देता है–

"बचो उस फ़ितने से जिसकी चपेट में सिर्फ़ ख़ास तौर पर वही लोग न आएँगे जिन्होंने तुममें से गुनाह किया है।"

(क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-25)

दूसरी ओर कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो दूसरों के मामले में बेजा दख़ल-अन्दाज़ी की हद तक दिलचस्पी लेते हैं। वे दूसरों के सुधार के लिए इतना परेशान रहते हैं कि ख़ुद अपने मसलों और अपने सुधार के सिलसिले में इतने फ़िक्रमन्द नहीं होते। ऐसे लोग कभी-कभी ख़ुदाई फ़ौजदार बन जाते हैं और अपनी हदों को पार कर जाते हैं। यह रवैया भी सन्तुलित और शान्तिप्रिय माहौल के लिए उपयुक्त नहीं।

क़ुरआन ऐसे लोगों को नसीहत करता है–

"ऐ ईमानवालो! अपनी चिन्ता करो, किसी दूसरे की गुमराही से तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा अगर तुम ख़ुद सीधे रास्ते पर हो।"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-105)

इस शिक्षा का सारांश यह है कि इनसान न तो खुदपरस्त हो जाए और अपने-आप में इस तरह सिमटकर रहे कि स्वार्थी बन जाए और न दूसरों के पीछे इस तरह पड़ जाए कि खुद अपने-आप से बेपरवाह हो जाए और दूसरों के निजी जीवन में दख़ल-अन्दाज़ी करने लगे, बल्कि व्यक्तिगत और सामूहिक तक़ाज़े के बीच इनसाफ़ और एतिदाल का मामला करे ताकि उसे सच्चा सौभाग्य प्राप्त हो और उसका वुजूद (अस्तित्व) दूसरों के लिए भी सफलता और भलाई व बरकत का सबब बने।

दीन (इस्लाम) की दावत में सन्तुलन

दीन (धर्म) की दावत इस्लाम की हिफ़ाज़त और प्रचार-प्रसार का बड़ा साधन है और मुस्लिम समुदाय का परम कर्तव्य है। इसी कर्तव्य को पूरा करने के लिए इस समुदाय (उम्मत) की स्थापना की गई है। दीन की दावत के लिए सिर्फ़ इच्छा और भावना ही काफ़ी नहीं है बल्कि दावत के तरीक़े की समझ और तरबियत भी ज़रूरी है। खुदा का फ़रमान है—

> "(ऐ नबी!) अपने रब के मार्ग की तरफ़ बुलाओ हिकमत और सदुपदेश के साथ और उन लोगों से बहस करो ऐसे ढंग से जो बेहतर हो। तुम्हारा रब ही ज़्यादा बेहतर जानता है कि कौन उसकी राह से भटका हुआ है और कौन सीधे रास्ते पर है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, आयत-125)

ऊपर की आयत में दावत के तरीक़े के बारे में क्रमवार तीन उसूल बयान किए गए हैं—

1. हिकमत 2. सदुपदेश 3. उत्तम तरीक़े पर बहस

1. हिकमत (तत्वदर्शिता) का शब्द हालात, माहौल, वक़्त और सम्बोधन की मानसिकता को ध्यान में रखने की तरफ़ इशारा करता है।

2. सदुपदेश का शब्द दावत पेश करने के तरीक़े, सलीक़े, बयान की मिठास, दिलनशीनी और अन्दाज़े-बयान की सरसता और सुन्दरता की ओर संकेत करता है।

3. अच्छे तरीक़े पर बहस का मतलब यह है कि अगर मुख़ातब ज़िद, दुश्मनी, कजबहसी, कठहुज्जती, झूठे आरोप मढ़ने आदि पर उतर आए तो जवाब में वही तरीक़ा न अपनाया जाए। बल्कि शराफ़त, सज्जनता, समझदारी और सन्तुलन के द्वारा अपनी बात रखी जाए और दावत की गुंजाइश बाक़ी रखी जाए।

दावत देनेवाले का काम अल्लाह के दीन की तरफ़ लोगों को बुलाना है, ज़ोर-ज़बरदस्ती के ज़रिए से दीन में दाख़िल करना नहीं है। दावत देनेवाला दावत देने का ऐसा तरीक़ा भी न अपनाए जिससे उसके अपने अनोखा होने, शेख़ी बघारने और बड़े बनने के एहसास की गंध (बू) आती हो, और न ऐसा काम करने का तरीक़ा अपनाए जिससे दीन को कमतर और दावत देनेवाले को घटिया समझ लिया जाए।

उपदेश और नसीहत में सन्तुलन

दीन की दावत देने की तरह मुसलमानों को दीन की तालीम देने और नसीहत करने में भी सन्तुलन और तवाज़ुन अपनाना बहुत ज़रूरी है। अगर दीन की दावत देनेवाला हर समय उपदेश और नसीहत करने बैठ जाए तो लोग उसके उपदेशों से ऊब जाएँगे और नसीहत बेअसर होकर रह जाएगी। उपदेश और नसीहत के लिए मुनासिब गैप रखना ज़रूरी है ताकि लोग शौक़ और दिलचस्पी से बात सुनें और असर क़बूल करें, यही अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) का आदर्श तरीक़ा था और यही आप (सल्ल॰) के साथियों यानी सहाबा (रज़ि॰) का अमल था।

अबू-वाइल (रह॰) रिवायत करते हैं कि हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि॰) हर जुमेरात (वृहस्पतिवार) को यानी सप्ताह में एक दिन इस्लाम का उपदेश दिया करते थे। एक आदमी ने उनसे दरख़ास्त की कि अबू-अब्दुर्रहमान (अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद) मेरी बड़ी ख़ाहिश है कि आप सप्ताह में एक दिन के बजाय रोज़ाना हमें उपदेश और नसीहत किया करें, यह सुनकर हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि॰) ने कहा—

"जो चीज़ हर रोज़ दीन की नसीहत करने से रोकती है वह यह है

कि मुझे यह पसन्द नहीं कि तुम लोग ऊब जाओ, मैं उसी तरह गैप कर-करके नसीहत करता हूँ जिस तरह नबी (सल्ल०) गैप कर-करके हमें नसीहत किया करते थे, ताकि हम लोग बोर न हो जाएँ।''

(हदीस : बुख़ारी)

सोच-विचार किया जाए कि प्यारे नबी (सल्ल०) ने अपने सहाबा (रज़ि०) को दीन की शिक्षा किस हिकमत और समझदारी के साथ दी है। लोगों की आसानी का ध्यान रखते हुए और सुननेवालों की ज़ेहनी हालत का कितना ख़याल रखा है। आज के ज़माने में इसका ख़याल रखना निहायत ज़रूरी है।

मुहब्बत और नफ़रत में सन्तुलन

इनसान बेएतिदाली का शिकार अधिकतर मुहब्बत व नफ़रत या दोस्ती-दुश्मनी के मामले में होता है। जब किसी से मुहब्बत करता है तो उसकी जाइज़ और नाजाइज़ हर बात का साथ देता है। उसे उसकी कमियाँ भी ख़ूबियाँ नज़र आने लगती हैं और जब किसी से नफ़रत करता है तो जाइज़ बातों में भी उसका विरोध करता है और उसे उसकी ख़ूबियाँ भी ख़ामियाँ नज़र आने लगती हैं।

फ़ितरी तौर पर इनसान को सबसे अधिक मुहब्बत और लगाव अपनी आल-औलाद से होता है, कभी-कभी वह प्रेम में इतना अन्धा हो जाता है कि उनकी ग़लतियाँ और गुनाहों के सुधार से भी आँखें बन्द कर लेता है। वे अगर दूसरे के साथ ज़्यादती और ज़ुल्म भी करें तब भी वह सच्चाई और इनसाफ़ से काम लेने के बजाय अपने बाल-बच्चों की हिमायत करता है। यह भी मुहब्बत में बेएतिदाली (असन्तुलन) है। एक कहावत मशहूर है कि 'मुहब्बत में ऐब हुनर बन जाता है और नफ़रत में हुनर ऐब हो जाता है', इस असन्तुलन से आदमी सच्चाई से दूर हो जाता है। इसी लिए मुहब्बत और नफ़रत में सन्तुलन क़ायम रखना निहायत ज़रूरी है।

मुहब्बत और नफ़रत की हालत ग़ैर-मामूली असर डालनेवाली हालत होती है। अगर इनसान इस हालत में ज़रा भी तवाज़ुन (सन्तुलन) खो दे तो ग़ैर-मामूली नुक़सान का डर है। हज़रत अली (रज़ि०) ने बड़ी हिकमत की

बात कही है—

"अपने दोस्त से तवाज़ुन के साथ मुहब्बत करो, किसी दिन वह तुम्हारा दुश्मन भी हो सकता है और अपने दुश्मन के साथ सन्तुलन के साथ दुश्मनी करो, किसी दिन वह तुम्हारा दोस्त भी बन सकता है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

इस बारे में हज़रत उमर (रज़ि॰) ने भी एक बड़ी हिकमत की बात कही है—

"तुम्हारी मुहब्बत अपने को बरबाद कर लेनेवाले आशिक़ जैसी न हो और न तुम्हारी नाराज़ी हलाक करनेवाली हो।"

किसी ने पूछा ऐसा कैसे हो सकता है तो हज़रत उमर (रज़ि॰) ने जवाब दिया—

"जब तुम मुहब्बत करते हो तो बच्चों की तरह टूटकर चाहते हो और जब नाराज़ हो जाते हो तो चाहते हो कि तुम्हारा मुक़ाबिल हलाक और बरबाद हो जाए।" (अल-अदबुल-मुफ़रद)

ख़ुद क़ुरआन मजीद में भी मुसलमानों को हिदायत की गई है कि वे दोस्ती या दुश्मनी में सन्तुलन के रास्ते से दूर न हों। कहा गया—

"किसी क़ौम की दुश्मनी तुमको इस बात पर न उभार दे कि तुम इनसाफ़ करना छोड़ दो। न्याय करो, यह तक़वा और परहेज़गारी से अधिक नज़दीक है।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-8)

दूसरी जगह कहा गया—

"और ऐसा न हो कि एक गरोह की दुश्मनी जिसने तुमको मस्जिदे-हराम (काबा) से रोका है तुम्हें इसपर आमादा करे कि तुम अत्याचार करने लगो।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-2)

गुस्से में सन्तुलन

गुस्सा आमतौर पर आदमी को इसलिए आता है कि दूसरा शख़्स उसके फ़ायदे के मक़सद को हासिल करने में रुकावट बन जाता है। या उसकी

उम्मीदों और इच्छाओं को ठेस पहुँचाता है। इससे इनसान ज़ेहनी तकलीफ़ में पड़ जाता है और इसकी प्रतिक्रिया गुस्से की शक्ल में ज़ाहिर होती है। गुस्से में कमी और सख़्ती भी तकलीफ़ के एहसास ही के अनुपात से होती है। गुस्से के वक़्त आमतौर पर इनसान संन्तुलन की हालत में नहीं होता। इसी लिए असन्तुलन के अधिकतर काम इसी हालत में कर गुज़रता है और बाद में वह बड़े दुख से हाथ मलता है। इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने गुस्से की हालत में फ़ैसला करने से मना किया है, क्योंकि इसमें बेइन्नसाफ़ी और बेएतिदाली की बड़ी संभावना है। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"कोई शख़्स दो लोगों के बीच गुस्से की हालत में फ़ैसला न करे।"
(हदीस : मुस्लिम)

सन्तुलन और तवाज़ुन की माँग यह है कि आदमी गुस्से के वक़्त अपने ऊपर क़ाबू रखे और अक़्ल और होश पर जज़बात और उत्तेजना को प्रभावी न होने दे। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि॰) बयान करते हैं कि एक बार नबी (सल्ल॰) ने सहाबा (रज़ि॰) से पूछा कि तुम लोग अपने में से किस को पहलवान समझते हो? सहाबा (रज़ि॰) ने जवाब दिया, "जिसको लोग पछाड़ न सकें।" नबी (सल्ल॰) ने कहा–

"नहीं, बल्कि पहलवान वह है जो गुस्से के वक़्त अपने ऊपर क़ाबू रखे।"
(हदीस : मुस्लिम)

नबी (सल्ल॰) ने गुस्से पर क़ाबू पाने का तरीक़ा भी बताया है–

"जब किसी को खड़े होने की हालत में गुस्सा आए तो बैठ जाए, अगर बैठने से गुस्सा ख़त्म न हो तो लेट जाए।"
(हदीस : मुसनद अहमद)

एक दूसरी हदीस में है कि जब गुस्सा आए तो वुज़ू कर लो। इसकी वजह यह बयान की गई–

"गुस्सा शैतान दिलाता है जो आग से पैदा किया गया है, और आग पानी से बुझ जाती है।"
(हदीस : मुसनद अहमद)

यह तो सामान्य जीवन में गुस्सा करने की बात है, जहाँ तक अल्लाह

की हदों (मर्यादाओं) और प्रतिष्ठा की पामाली का मामला है तो इसपर ग़ुस्सा आना बरहक़ है। यह नहीं हो सकता कि किसी सच्चे मुस्लिम के सामने अल्लाह की प्रतिष्ठा पामाल हो और उसकी दीनी ग़ैरत न जागे और उसे ग़ुस्सा न आए, बल्कि ग़ुस्सा ज़रूर आएगा मगर इसमें भी एतिदाल (सन्तुलन) लाज़िम है जो अल्लाह की हदों को लागू करने में छिपा हुआ है।

बदला लेने में सन्तुलन

ज़ुल्म, अत्याचार और दूसरे के हक़ पर हाथ डालने से इस्लाम ने सख़्ती से रोका है, लेकिन मानव-समाज में ज़ुल्म और अत्याचार अलग-अलग शक्लों में हमेशा से पाया जाता रहा है, इसलिए इस्लाम ने इजाज़त व छूट दी है कि अगर कोई आदमी किसी पर ज़ुल्म व अत्याचार करे तो मज़लूम (पीड़ित) अत्याचार करनेवाले से बदला ले सकता है, मगर बदला लेने की शर्त यह रखी है कि जितनी ज़्यादती की गई है उसी के मुताबिक़ बदला लिया जाए। बदला लेने में बेएतिदाली (असन्तुलन) से काम न लिया जाए, यानी मज़लूम बदला इतना न ले कि खुद ज़ालिम बन जाए। खुदा का फ़रमान है—

> "जो तुमपर अत्याचार करे तो जैसा अत्याचार वह तुमपर करे, तुम भी उसी तरह उससे अत्याचार का बदला ले सकते हो अलबत्ता अल्लाह से डरते रहो।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-194)

दूसरी जगह कहा गया है—

> "और जब उनपर ज़्यादती की जाती है तो वे उसका मुक़ाबला करते हैं, बुराई का बदला उतनी ही बुराई है, फिर जो कोई माफ़ कर दे और सुधार करे उसका बदला अल्लाह के ज़िम्मे है, और अल्लाह ज़ालिमों को पसन्द नहीं करता।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-42 शूरा, आयतें-39,40)

यानी ज़ुल्म और ज़्यादती की मिक़दार (मात्रा) और अनुपात के मुताबिक़ बदला लेने में कोई हरज नहीं, हाँ माफ़ करना और सुलह करना अधिक पसन्दीदा है।

एक बार कुछ यहूदी अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के पास

आए और 'अस्सलामु-अलैकुम' (तुम पर सलामती हो) कहने के बजाय "अस्सामु-अलैकुम" (तुमपर मौत हो) कहा और यह दिखाना चाहा कि मानो वे सलाम कर रहे हैं। हज़रत आइशा (रज़ि॰) ने तुरन्त जवाब दिया, "तुमपर भी मौत हो, तुमपर अल्लाह की फिटकार हो और अल्लाह का ग़ज़ब हो!" यह सुनकर ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"आइशा! बस करो, नरमी अपनाओ, सख़्ती और बुरा-भला कहने से परहेज़ करो।"

हज़रत आइशा (रज़ि॰) ने कहा, "आपने सुना नहीं कि इन लोगों ने क्या कहा?" नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"तुमने सुना नहीं कि मैंने जवाब में क्या कहा? मैंने उनकी बद्दुआ उनको लौटा दी। मेरी बद्दुआ उनके बारे में क़बूल हो जाएगी और उनकी बद्दुआ मेरे सिलसिले में क़बूल न होगी।"

(अल-अदबुल-मुफ़रद)

बदला लेने में सन्तुलन का मतलब यह है कि उन्हीं लोगों से बदला लिया जाए जो अपराधी और ज़ालिम हैं। ज़ालिम की क़ौम के बेगुनाह लोगों से बदला न लिया जाए। यानी मुजरिमों के साथ मासूमों (बेक़ुसूरों) को निशाना न बनाया जाए। अल्लाह ने इस असन्तुलन से बचने की ताकीद की है। क़ुरआन मजीद में है–

"और जो शख़्स ज़ुल्म के साथ क़त्ल किया गया हो उसके वली (संरक्षक) को हमने क़िसास (बदला लेने) की माँग का हक़ दिया है, तो चाहिए कि वह क़त्ल में हद से आगे न बढ़े, उसकी मदद की जाएगी।" (क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-33)

ख़ुशी और ग़म में सन्तुलन

ख़ुशी और ग़म इनसानी ज़िन्दगी की दो फ़ितरी कैफ़ियत हैं जो भावनाओं और एहसासों से सीधे तौर पर जुड़े हुए हैं। ख़ुशी का कारण किसी मनपसन्द चीज़ का मिल जाना है और ग़म का कारण उस चीज़ का छिन जाना है। इन दोनों मौक़ों पर ख़ुशी और ग़म के ज़ाहिर करने में इनसान

आमतौर पर सन्तुलन की सीमाओं का पाबन्द नहीं रहता। मिसाल के तौर पर ख़ुशी का एक अहम मौक़ा वह है जब किसी के घर में जीवन-साथी आए यानी शादी हो और दूसरा मौक़ा वह है जब किसी के यहाँ बच्चा पैदा हो। लेकिन इन मौक़ों पर कुछ लोग खेल-कूद, नाच-गाने और बाजे, फ़ुज़ूलख़र्ची और बेहूदा रस्मों की पाबन्दी करके ख़ुशी को ज़ाहिर करते हैं जबकि यह शुक्र अदा करने का अवसर है और शुक्र की माँग यह है कि इनसान अल्लाह के हुक्म का फ़रमाँबरदार रहे।

इसी तरह ग़म का बड़ा वक़्त वह है जब किसी रिश्तेदार की मौत हो जाए, जिसपर आदमी अपने रंजो-ग़म का इज़हार करता है, मातम करता है, शोक मनाता है। अरब के लोगों में रिवाज था कि वे ऐसे मौक़े पर ख़ुद भी रोते थे और रोने के लिए बाहर से भी लोगों को बुलाते थे। इस्लाम ने ग़म को फ़ितरी क़रार देकर उसके तक़ाज़ों को बाक़ी रखा, लेकिन रोने-रुलाने की राइज रस्मों पर पाबन्दी लगाकर सन्तुलन की शिक्षा दी। चुनाँचे हज़रत उम्मे-अतीया (रज़ि॰) कहती हैं–

"नबी (सल्ल॰) ने जब औरतों से बैअत (प्रतिज्ञा) ली तो उनको यह भी हुक्म दिया कि वे मुर्दों पर रोएँगी नहीं।" (हदीस : बुख़ारी)

इसकी जगह इस्लाम ने सब्र और बरदाश्त करने की नसीहत की, चुनाँचे हज़रत सुहैब-बिन-सिनान (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"मोमिन (सच्चे मुसलमान) का मामला कितना श्रेष्ठ है कि तमाम मामले उसके लिए भलाई का कारण हैं और यह सिर्फ़ मोमिन ही को प्राप्त है। अगर उसे कोई ख़ुशी हासिल होती है और वह शुक्र अदा करता है तब यह उसके लिए भलाई का कारण है और अगर उसे कोई सदमा या दुख पहुँचता है और वह सब्र करता है तब भी उसके लिए भलाई का कारण है।" (हदीस : मुस्लिम)

यानी ख़ुशी के मौक़े पर शुक्र और ग़म के मौक़े पर सब्र मानव-जीवन के लिए सन्तुलन व तवाज़ुन का नुस्ख़ा है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के प्रिय

बेटे इबराहीम का देहान्त हुआ, उस मौक़े पर आप (सल्ल॰) ने कहा—

"आँख आँसू बहा रही है, दिल बड़ा दुखी है और हम वही कहते हैं जो हमारे रब को पसन्द आए। ऐ इबराहीम! हम तुम्हारी जुदाई पर बहुत ही दुखी हैं।" (हदीस : अबू-दाऊद)

खाने-पीने में सन्तुलन

खाना-पीना इनसान की बुनियादी ज़रूरत है। इसको पूरी किए बग़ैर वह ज़िन्दा नहीं रह सकता। इस्लाम ने इस ज़रूरत को पाकीज़ा (शुद्ध) तरीक़े से सन्तुलन के साथ पूरी करने का हुक्म दिया है। इनसान जो कुछ खाए वह सेहत के लिए फ़ायदेमन्द हो, हलाल और पाकीज़ा हो, सेहत के लिए नुक़सानदेह, हराम और नापाक (अशुद्ध) न हो। अल्लाह का यह हुक्म सारे पैग़म्बरों और उनकी उम्मतों (समुदायों) के लिए रहा है। अल्लाह तआला का फ़रमान है—

"ऐ पैग़म्बरो! पाकीज़ा चीज़ें खाओ और अच्छे अमल (कर्म) करो, मैं तुम्हारे कर्मों से बाख़बर हूँ।"

(क़ुरआन, सूरा-23 मोमिनून, आयत-51)

पाकीज़ा और शुद्ध चीज़ों को खाने में भी सन्तुलन और तवाज़ुन का ख़याल रखना ज़रूरी है। इनसान इतना न खाए कि बद्हज़मी (अपच) हो जाए, इनसान सुस्त और आलसी हो जाए, न इबादत कर सके और न दूसरे कामों में जी लगा सके। अल्लाह का फ़रमान है—

"खाओ-पियो और हद से आगे न बढ़ो, अल्लाह हद से बढ़नेवालों को पसन्द नहीं करता।" (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-31)

एक मर्तबा एक ग़ैर-मुस्लिम नबी (सल्ल॰) के पास आया। आप (सल्ल॰) ने उसके लिए एक बकरी का दूध दूहने का हुक्म दिया। वह ग़ैर-मुस्लिम मेहमान सारा दूध पी गया, मगर उसका पेट न भरा। आप (सल्ल॰) ने दूसरी बकरी दूहने का हुक्म दिया। ग़ैर-मुस्लिम मेहमान उसे भी पी गया फिर भी उसका पेट न भरा, यहाँ तक कि वह सात बकरियों का दूध पी गया। अगले दिन वह पैग़म्बर (सल्ल॰) की मजलिस में हाज़िर होकर मुसलमान हो गया।

नबी (सल्ल॰) ने उसके लिए फिर दूध मँगवाया, उसने बिसमिल्लाह करके दूध पिया और एक बकरी का दूध भी न पी सका। इसपर नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"सत्य का इनकारी सात आँतों में खाता है और मोमिन (सच्चा मुस्लिम) एक आँत में खाता है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

लिबास में सन्तुलन

इस्लाम की नज़र में इनसान का स्वभाव, रुझान और व्यक्तित्व का आईनादार उसका लिबास होता है। इसलिए लिबास में भी सन्तुलन अपनाना बहुत ही ज़रूरी है। लिबास इनसान की ज़रूरत भी है और शोभा भी। इसलिए दोनों पहलुओं से इसमें बीच की राह अपनाने की ज़रूरत है। इसी लिए जहाँ यह बात नापसन्दीदा है कि आदमी अपनी हैसियत से ज़्यादा क़ीमती लिबास पहने वहाँ यह भी नापसन्दीदा है कि वह परागन्दा, पुराना और घटिया लिबास पहनकर अपने व्यक्तित्व की तौहीन करे। हाँ, साफ़-सुथरा और औसत दरजे का लिबास ख़ाकसारी के तौर पर पहनना मुनासिब है। रेशमी और टख़्नों से नीचे लटकनेवाले लिबास को इस्लाम बेएतिदाल (असन्तुलित) लिबास क़रार देता है। औरतों के लिए यह हुक्म नहीं है। नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है—

"जो मर्द दुनिया में रेशमी लिबास पहनता है वह आख़िरत (परलोक) में उसे नहीं पहन सकेगा।" (हदीस : बुख़ारी)

फिर नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जो घमण्ड की वजह से अपने कपड़े घसीटता है, क़ियामत के दिन अल्लाह उसकी तरफ़ नहीं देखेगा।" (हदीस : बुख़ारी)

इसी तरह दिखावे, नुमाइश और शोहरत का लिबास भी इनसान के असन्तुलन की ओर इशारा करता है। चुनाँचे नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"जो दुनिया में शोहरत का लिबास पहनता है, क़ियामत के दिन अल्लाह उसे ज़िल्लत व रुसवाई का लिबास पहनाएगा।"

(हदीस : इब्ने-माजा)

अगर बेहतरीन लिबास इस्तेमाल करने में घमण्ड शामिल न हो तो वह न सिर्फ़ अपेक्षित है बल्कि आदमी के व्यक्तित्व के मुताबिक़ है जैसा कि नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है—

"जिस आदमी के दिल में कणभर भी घमण्ड होगा वह जन्नत में दाख़िल न हो सकेगा।" एक आदमी ने कहा कि इनसान तो चाहता है कि उसका कपड़ा अच्छा हो, उसका जूता अच्छा हो। तब नबी (सल्ल॰) ने कहा कि "बेशक अल्लाह सौन्दर्यवान है और सुन्दरता को पसन्द करता है।" (हदीस : मुस्लिम)

अच्छे लिबास पसन्दीदा हैं और आदमी की हैसियत का परिचय कराते हैं, इसी लिए ख़ुदा को पसन्द है कि बन्दा उसकी नेमत का इज़हार करे। अतः नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"बेशक अल्लाह पसन्द करता है कि अपने बन्दे पर अपनी नेमत का असर देखे।" (हदीस : तिरमिज़ी)

मानो कि घमण्ड, शेख़ी और हद से बढ़ा हुआ लिबास भी बेएतिदाली (असन्तुलन) में शामिल है और अपनी हैसियत से बढ़कर पाकीज़ा और तहज़ीब से गिरा हुआ लिबास भी बेएतिदाली में शामिल है।

इक्कीसवीं शताब्दी में पश्चिमी कल्चर के दीवाने लड़के और लड़कियाँ जिस प्रकार असन्तुलन में ग्रसित हो रहे हैं उसका एक प्रदर्शन लिबास में हो रहा है। लड़कियाँ भी तंग-चुस्त लिबास इस्तेमाल करने लगी हैं और शरीर के अंग इस प्रकार नुमायाँ करती हैं कि उनको किसी तरह भी सभ्य और शालीन नहीं कहा जा सकता। यह न सिर्फ़ इस्लामी नैतिक आचरण की ख़िलाफ़वर्ज़ी है बल्कि समाज में बुराइयों को बढ़ावा देने की कोशिश है। इस तरह के असन्तुलन को रोकने की बड़ी ज़रूरत है।

चाल-ढाल और बातचीत में सन्तुलन

इस्लाम ने इनसान को सामाजिक जीवन के जो उसूल और आदाब सिखाए हैं, उनमें चाल-ढाल और बातचीत में बीच का रास्ता अपनाना भी शामिल है। ज़मीन पर इतराकर चलना, अकारण तेज़ गति से चलना और

चीख़-चीख़कर बातें करना सेहतमन्द रवैया नहीं है। क्योंकि इतराकर चलना और चीख़ना-चिल्लाना आदमी के स्वभाव के असन्तुलित होने की दलील है। इसी लिए ख़ुदा हुक्म देता है—

> "अपनी चाल में बीच का रास्ता अपनाओ और अपनी आवाज़ नीची रखो, बेशक बुरी आवाज़ गधे की आवाज़ है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-31 लुक़मान, आयत-19)

अगर किसी को पुकारना हो तो आवाज़ ज़रूर ऊँची होगी, अगर कहीं पहुँचने की जल्दी हो तो आदमी अपनी चाल ज़रूर तेज़ करेगा, यह बेएतिदाली (असन्तुलन) नहीं है। अतः हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि हम लोग बैठे हुए थे कि नबी (सल्ल०) तेज़ क़दमों से हमारे पास आए। आप (सल्ल०) के तेज़ चलने से हम लोग घबरा गए। आप (सल्ल०) ने हमें सलाम किया और कहा कि मैं तेज़ी से तुम्हारे पास इसलिए आया हूँ कि तुमको लैलतुल-क़द्र के बारे में बताऊँ, यह मैं बताना भूल गया था। (अल-अदबुल-मुफ़रद)

असन्तुलन यह है कि आदमी बिना ज़रूरत आवाज़ ऊँची करे, चीख़कर बात करे, शोर व हँगामा करे, आदर-सम्मान और सज्जनता छोड़कर बिना ज़रूरत तेज़ चलने का प्रदर्शन करे।

राजनीतिक ज़िन्दगी में सन्तुलन

राजनीतिक ज़िन्दगी में असन्तुलन का मुज़ाहिरा (प्रदर्शन) व्यक्ति और हुकूमत के आपसी मेल-सम्बन्ध और अधिकारों व कर्तव्यों के बारे में होता है। एक गरोह व्यक्ति को इतनी आज़ादी देता है कि वह उसका ग़लत इस्तेमाल करके दूसरे इनसानों के अधिकारों पर डाका डालने लगता है और उनका शोषण करता है। वह एक ऐसी व्यवस्था क़ायम करता है जिसमें मानव-संसाधन सिमटकर कुछ होशियार और चालाक हाथों में केन्द्रित हो जाते हैं और अक्सरियत (बहुसंख्यक) उनसे वंचित होकर रह जाती है। फिर वह चालाक लोगों के हाथों बुने हुए जाल में इस तरह फँस जाती है कि उसके लिए उससे निकलना असंभव हो जाता है।

दूसरा तबक़ा व्यक्ति की आज़ादी को इस प्रकार हड़प करता है कि उसे सिवाय कुछ बुनियादी ज़रूरतों को पूरी करने के किसी भी चीज़ का अधिकार नहीं देता बल्कि वह सारे इख़्तियारात हुकूमत को सौंप देता है, इसके नतीजे में इनसान अपने-आपको एक ऐसी अत्याचारपूर्ण व्यवस्था में घिरा हुआ पाता है जो उसकी योग्यताओं और शक्तियों को बढ़ने से वंचित कर देती है।

पश्चिमी देशों की व्यवस्था व्यक्ति की बेलगाम आज़ादी और साम्राज्यवाद की व्यवस्था हुकूमत के इख़्तियारात की दो इन्तिहाओं (सीमान्तों) की इबरतअंगेज़ मिसाल हैं। पश्चिमी व्यवस्था व्यक्ति को इतनी आज़ादी देती है कि समलैंगिकता और कुकर्म करने को भी उसका अधिकार मान लेती है। जबकि साम्राज्यवादी व्यवस्था व्यक्ति को अक़ीदा और इबादत की आज़ादी से भी वंचित कर देती है और राय की आज़ादी पर भी पाबन्दी लगा देती है। इस ग़ैर-फ़ितरी इन्तिहापसन्दी का नतीजा यह निकला कि साम्राज्यवादी व्यवस्था रूस (पूर्व सोवियत संघ) में, जहाँ वह पैदा हुई और पली-बढ़ी, टूट-फूटकर इबरत का नमूना बन चुकी है जबकि पश्चिमी व्यवस्था अपने अंजाम की प्रतीक्षा में है।

इस्लाम ने इन दोनों इन्तिहाओं के बीच व्यक्ति और रियासत के अधिकार निश्चित किए। वह एक तरफ़ तो व्यक्ति को आज़ादी और स्वतंत्रता प्रदान करता है लेकिन दूसरी तरफ़ वह हुकूमत को ऐसे अधिकार और क़ानून बनाने का हक़ देता है जो व्यक्ति को उनके अधिकारों को ग़लत इस्तेमाल करने से रोक सकें। वह व्यक्ति और रियासत के अधिकारों और कर्तव्यों में ऐसा सन्तुलन क़ायम करता है जो दोनों को एक-दूसरे की तामीर व तरक़्क़ी में सहयोगी बना दे। और एक सेहतमन्द राजनीतिक व्यवस्था क़ायम रखने में मददगार साबित हो। वह एक ओर तो व्यक्ति को यह हुक्म देता है—

"सुनो और फ़रमाँबरदारी करो, अगरचे तुम्हारे ऊपर हब्शी ग़ुलाम ही शासक हो, जिसका सिर किशमिश की तरह हो।"

(हदीस : बुख़ारी)

और दूसरी तरफ़ हुकूमत के शासक से यह कहता है–

"जिस आदमी को अल्लाह ने क़ौम का शासक बनाया और उसने क़ौम की भलाई न चाही वह जन्नत की ख़ुशबू न पा सकेगा।"

(हदीस : बुख़ारी)

ख़ुदा के हक़ और बन्दों के हक़ में सन्तुलन

इनसान सबसे अधिक असन्तुलन ख़ुदा के हक़ों और बन्दों के हक़ों के सिलसिले में करता है। कभी तो वह ख़ुदा के हक़ों में इतना खो जाता है कि बन्दों के हक़ों की उसे चिन्ता तक नहीं होती, जबकि ये हक़ भी ख़ुदा ही के लागू किए हुए हैं। और उनकी अदायगी भी ख़ुदा का ही आज्ञापालन है जिसपर अच्छे बदले और सवाब का वादा है। और कभी वह इनसानी हक़ों की अदायगी में इतना मस्त हो जाता है कि ख़ुदा के हक़ अदा करने का उसे वक़्त ही नहीं मिलता।

मुस्लिम समाज में इस असन्तुलन का शिकार बहुत-से लोग हैं, आप देखेंगे कि जनता की सेवा करनेवाले लोग, दूसरों को आराम पहुँचाने में लगे हुए लोग और सामाजिक संस्थाओं से जुड़े हुए लोग आमतौर पर नमाज़, रोज़ा और बुनियादी इस्लामी फ़र्ज़ों से ग़ाफ़िल और बेपरवाह नज़र आते हैं। वे बन्दों की सेवा करते हैं लेकिन ख़ुदा की बन्दगी की तौफ़ीक़ नहीं पाते। दूसरी तरफ़ दीनदार, इबादतगुज़ार और आबिद-ज़ाहिद लोगों की एक बड़ी तादाद समाज-सेवा तो दूर, ख़ुद अपने नाते-रिश्तेदारों बल्कि अपने बाल-बच्चों के हक़ों की अदायगी से भी लापरवाही बरतती है। इस्लाम इस असन्तुलन को भी सुधार करने के क़ाबिल ठहराता है। उसके निकट सन्तुलित जीवन वह है जो ख़ुदा के हक़ और बन्दों के हक़ दोनों में सन्तुलन और तवाज़ुन क़ायम रखे।

नबी (सल्ल॰) के सहाबा (रज़ि॰) ने मदीना की तरफ़ हिजरत की तो नबी (सल्ल॰) ने हर मुहाजिर सहाबी (रज़ि॰) को किसी-न-किसी अनसारी सहाबी का भाई बनाया, यानी इस्लाम के उसूली भाई-चारे के साथ व्यावहारिक भाईचारे का ऐसा रिश्ता क़ायम किया जो उनके लिए ख़ून की रिश्तेदारियों

का बदल साबित हुआ, उसे हम 'भाईचारा' का नाम देते हैं। इसी भाईचारे के तहत नबी (सल्ल॰) ने हज़रत सलमान फ़ारसी (रज़ि॰) को जो मुहाजिर थे, हज़रत अबू-दरदा का भाई बनाया जो कि अनसारी थे, उन दोनों महापुरुषों का एक सच्चा क़िस्सा हदीस की किताबों में इस प्रकार मिलता है—

> हज़रत सलमान फ़ारसी (रज़ि॰) हज़रत अबू-दरदा (रज़ि॰) से मिलने गए तो उन्होंने अबू-दरदा (रज़ि॰) की बीवी उम्मे-दरदा (रज़ि॰) को परागन्दा शक्ल-सूरत की हालत में पाया। उनसे पूछा, "आपका क्या हाल है?" तो उम्मे-दरदा (रज़ि॰) ने जवाब दिया, "आपके भाई अबू-दरदा को दुनिया की ज़रूरत नहीं (यानी उनको इबादत व रियाज़त ने मेरे हक़ों की तरफ़ से बेपरवाह कर दिया है)।" जब अबू-दरदा (रज़ि॰) घर आए तो सलमान (रज़ि॰) के लिए खाना लाए और बोले, "आप खा लीजिए, मैं तो रोज़े से हूँ।" इसपर हज़रत सलमान (रज़ि॰) ने कहा, "जब तक आप नहीं खाते, मैं नहीं खा सकता।" चुनाँचे अबू-दरदा (रज़ि॰) ने अपना रोज़ा तोड़ दिया और खाना साथ में खाया। जब रात हुई तो अबू-दरदा (रज़ि॰) नमाज़ के लिए उठने लगे तो हज़रत सलमान (रज़ि॰) ने कहा, "सो जाइए।" वे सो गए, फिर कुछ देर बाद उठे तो हज़रत सलमान (रज़ि॰) ने कहा, "सो जाइए।" इसलिए वह फिर सो गए। जब रात ख़त्म होने को आई तो हज़रत सलमान (रज़ि॰) ने कहा, "अब उठिए।" चुनाँचे वे उठे और दोनों ने साथ नमाज़ पढ़ी। इसके बाद हज़रत सलमान (रज़ि॰) ने यह बात कही कि आपके रब का भी आपपर हक़ है और आपकी जान का भी आपपर हक़ और आपके बाल-बच्चों का भी आपपर हक़ है, तो हर हक़दार को उसका हक़ अदा कीजिए। सुबह को अबू-दरदा (रज़ि॰) नबी (सल्ल॰) के पास आए और पूरा माजरा सुनाया तो आप (सल्ल॰) ने कहा, "सलमान ने सच कहा।" (हदीस : बुख़ारी)

विचार कीजिए कि नबी (सल्ल॰) ने हज़रत सलमान (रज़ि॰) की तसदीक़ (पुष्टि) किस बात पर की? इसी पर न कि उन्होंने हज़रत अबू-दरदा (रज़ि॰)

को इल्मी और अमली दोनों तरह से सन्तुलन का रास्ता दिखाया। इबादत और ज़िन्दगी के बीच, अल्लाह के हक़ों और बन्दों के हक़ों के बीच सन्तुलित सम्बन्ध स्पष्ट किया। इसकी और अधिक स्पष्टता एक हदीस से होती है, हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं–

"नबी (सल्ल०) ने हज़रत उसमान-बिन-मज़ऊन (रज़ि०) को बुलाया और कहा कि ऐ उसमान! क्या तुम मेरी सुन्नत (तरीक़े) से हट रहे हो? उन्होंने कहा, नहीं ऐ अल्लाह के रसूल! अल्लाह की क़सम ऐसा नहीं है, बल्कि मैं तो आपकी सुन्नत का तलबगार हूँ। तब आप (सल्ल०) ने कहा, मैं सोता भी हूँ, नमाज़ भी पढ़ता हूँ, रोज़ा भी रखता हूँ और इफ़्तार (खाना-पीना) भी करता हूँ, औरतों से निकाह भी करता हूँ। ऐ उसमान! अल्लाह से डरो! क्योंकि तुम्हारी बीवी का तुम्हारे ऊपर हक़ है, तुम्हारे मेहमान का तुम्हारे ऊपर हक़ है और तुम्हारी जान का तुम्हारे ऊपर हक़ है। लिहाज़ा रोज़ा भी रखो और इफ़्तार भी करो, नमाज़ भी पढ़ो और सोया भी करो।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल०) ने एक बार सहाबा (रज़ि०) से सवाल किया। बताओ, मुफ़लिस (मुहताज) कौन है? सहाबा (रज़ि०) ने जवाब दिया, "हमारे समाज में मुफ़लिस उसे कहा जाता है जिसके पास रुपया-पैसा और सामान न हो।"

इसपर नबी (सल्ल०) ने कहा–

"मुफ़लिस तो वह है जो क़ियामत के दिन रोज़ा, नमाज़ और ज़कात लेकर आएगा लेकिन उसने दुनिया में किसी को गाली दी होगी, किसी का माल हड़प किया होगा, किसी पर इलज़ाम लगाया होगा, किसी का ख़ून बहाया होगा, किसी को मारा होगा तो उसके बदले में उसकी नेकियाँ उन लोगों को दे दी जाएँगी, जिनका उसने हक़ मारा है। जब उसके पास कुछ न बचेगा तो उन सबका गुनाह उसपर डाल दिया जाएगा।" (हदीस : मुस्लिम)

पता चला कि अगर अल्लाह के हक़ों के साथ बन्दों के हक़ों का लिहाज़ और ध्यान न रखा गया तो इनसान अच्छे अमल करने के बावजूद बेअमल रहेगा, क्योंकि उसका अमल उसके कुछ काम न आएगा और वह बेअमल लोगों के साथ जहन्नम में जाएगा। इसी तरह अगर सिर्फ़ बाल-बच्चों, माँ-बाप और नाते-रिश्तेदारों के हक़ों और मुहब्बत में घिरकर इनसान अल्लाह के हक़ों से बेपरवाह हो जाए, तब भी वह ख़ुद को जहन्नम से नहीं बचा सकता। चुनाँचे क़ुरआन मजीद स्पष्ट रूप से कहता है—

"कह दो! अगर तुम्हारे बाप, तुम्हारे भाई, तुम्हारी बीवियाँ, तुम्हारे नाते-रिश्तेदार, तुम्हारे वे माल जो तुमने कमाए हैं, तुम्हारे वे कारोबार जिनके धीमा पड़ जाने का तुम्हें डर है और तुम्हारे घर जो तुम्हें पसन्द हैं तुम्हें अल्लाह और उसके रसूल की राह में जिहाद से अधिक प्रिय हैं तो इन्तिज़ार करो यहाँ तक कि अल्लाह अपना फ़ैसला तुम्हारे सामने ले आए, और अल्लाह फ़ासिक़ (अवज्ञाकारी) लोगों को राह नहीं दिखाता।"

(क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयत-24)

पाकीज़गी और दुआ में सन्तुलन

पकीज़गी इबादत की शर्त है और दुआ इबादत की रूह है, लेकिन इनमें भी बेएतिदाली (असन्तुलन) नापसन्दीदा है। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मुग़फ़्फ़ल (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल०) ने कहा—

"मेरी उम्मत में कुछ लोग ऐसे होंगे जो पाकीज़गी और दुआ में बेएतिदाली (असन्तुलन) करेंगे।" (हदीस : अबू-दाऊद)

पाकीज़गी में बेएतिदाली का मतलब यह है कि इस्तिंजा और वुज़ू करने में ज़रूरत से ज़्यादा पानी का इस्तेमाल किया जाए और दुआ में असन्तुलन का मतलब यह है कि पैग़म्बर (सल्ल०) से साबित मसनून दुआओं को छोड़कर, बनावटी क़िस्म की और शाइराना दुआएँ माँगी जाएँ और एक ही दुआ बार-बार माँगी जाए या लम्बी-लम्बी दुआएँ माँगी जाएँ।

इन दोनों मामलों में असन्तुलन का मुज़ाहरा ख़ास तौर पर मस्जिदों में

होता है और ऐसा करनेवाले दीनदार मुसलमान ही होते हैं। कभी-कभी तो ऐसा महसूस होता है कि यह बेएतिदाली (असन्तुलन) हमारा कलचर बन गई है। इस असन्तुलन पर क़ाबू पाने की ज़रूरत है। दुआ जामेअ (व्यापक) और छोटी हो और पानी का इस्तेमाल भी सिर्फ़ ज़रूरत-भर हो।

फ़िक़ही मसलों में सन्तुलन

दीन और शरीअत (इस्लामी धर्म-विधान) के नाम पर असन्तुलन पैदा करने का काम अधिकतर फ़िक़ही मसलों के ज़िम्मेदार और अनुयायी लोग ही कर रहे हैं। पैरवी करने और न करने का मसला हालाँकि बहुत पुराना है, लेकिन आज यह सिर्फ़ फ़िक़ही मसला नहीं रह गया है, बल्कि मसलकी पहचान और गरोहबन्दी में बदल गया है और हर फ़रीक़ व गरोह क़ुरआन की इस आयत को अपने ऊपर साबित करता हुआ नज़र आ रहा है—

> "इन लोगों ने अपने दीन (इस्लाम) को आपस में टुकड़े-टुकड़े कर लिया, हर गरोह के पास जो कुछ है उसी में वह मग्न है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-23 मोमिनून, आयत-53)

मसलक के बारे में इन्तिहापसन्दी ने मुसलमानों के दिलों में फूट डाल दी है, मस्जिदें मसलकों के नाम पर बँट गई हैं, एक-दूसरे के रहनुमाओं को बुरा-भला कहने का सिलसिला चल पड़ा है और एक-दूसरे को झूठा और बातिल ठहराने की मुहिम ज़ोर पकड़ गई है। नौबत यहाँ तक आ गई है कि ग़ैर-मुक़ल्लिद (मसलकों की पैरवी न करनेवाले) लोग मुक़ल्लिद (मसलकों की पैरवी करनेवाले) लोगों को शिर्क करनेवाला कहने लगे हैं और मुक़ल्लिद लोग ग़ैर-मुक़ल्लिद लोगों को बेदीन साबित करने पर तुले हुए हैं। मज़े की बात यह है कि दोनों गरोह क़ुरआन और हदीस और पिछले फ़िक़ह के आलिमों का हवाला देकर अल्लाह के रास्ते में फ़साद फैलाने में लग गए हैं। मसलकी इन्तिहापसन्दी बहस-मुबाहसे और मुनाज़रे से आगे बढ़कर लड़ाई-झगड़े, मार-पीट और मुक़द्दमेबाज़ी में दाख़िल हो गई है।

मसलकी तशद्दुद (हिंसा) और गरोहबन्दी की इस गर्मबाज़ारी में सबसे बड़ी ज़रूरत उम्मत (मुस्लिम समुदाय) को सन्तुलन और तवाज़ुन अपनाने की

है, नहीं तो यहूदियों और ईसाइयों की तरह यह भी हक़ की राह से भटक कर रह जाएगी। अगर तक़लीद करनेवालों से यह सवाल किया जाए कि जो आदमी क़ुरआन और सुन्नत पर अमल करता है, क्या वह गुमराह है? तो साफ़ बात है कि उसका जवाब नहीं में है। क्योंकि क़ुरआन और सुन्नत ही पर ईमान की धुरी है। फिर किसी आदमी को किसी मसलक की पैरवी करनेवाला न होने और क़ुरआन व हदीस पर अमल करने की वजह से बेदीन कैसे कहा जा सकता है?

इसी तरह ग़ैर-मुक़ल्लिदीन से पूछा जाए कि जो आदमी क़ुरआन-सुन्नत का आलिम न हो तो क्या वह किसी इमाम की तक़लीद (पैरवी) के बिना सीधे-सीधे क़ुरआन और हदीस से फ़ायदा उठा सकता है और अपनी अमली ज़िन्दगी के लिए शरई हुक्मों का वाज़ेह नतीजा निकाल सकता है? इसका जवाब भी नहीं में है। आम आदमी तो तक़लीद ही करता है। अगर चारों इमामों में से किसी की पैरवी नहीं करेगा तो अपने वक़्त के किसी आलिम की पैरवी करेगा। इसलिए अगर कोई आदमी किसी इमाम की तक़लीद करता है तो इसे शिर्क का नाम कैसे दिया जा सकता है? दोनों गरोह को ठंडे दिल से सोचने और सन्तुलित नज़रिया अपनाने की ज़रूरत है।

हज़रत शाह वलीयुल्लाह मुहद्दिस देहलवी (रह०) ने लिखा है—

> "पूरी मुस्लिम उम्मत या इसकी अक्सरियत (बहुसंख्यक) चारों इमामों के जमा किए हुए मज़हबों (तरीक़ों) की पैरवी पर क़ायम है। इस तक़लीद (पैरवी) की बहुत-सी मसलिहतें हैं जो कि ज़ाहिर हैं। ख़ास तौर पर आज के ज़माने में जबकि कम-हिम्मती का दौर-दौरा है, दिलों में नफ़्स (मन) की ख़ाहिशें बसी हुई हैं और हर आदमी अपनी राय पर नाज़ कर रहा है।"
>
> (अल-इनसाफ़-फ़ी-बयान असबाबिल-इख़्तिलाफ़ पृष्ठ-97)

यह भी एक सच्चाई है कि तक़लीद (पैरवी) उन्हीं मसलों में हो सकती है जिनमें क़ुरआन और सुन्नत से कोई वाज़ेह हुक्म न मिलता हो और जिसमें आलिमों की रायें अलग-अलग हों। अगर किसी मसले में क़ुरआन और हदीस से कोई हुक्म साबित हो, उसके मुक़ाबले में कोई दूसरी सहीह हदीस भी

मौजूद न हो तो उसे छोड़कर किसी इनसान की तक़लीद करना हरगिज़ जाइज़ नहीं, क्योंकि किसी भी आलिम या इमाम को शरीअत देनेवाले यानी अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का मक़ाम नहीं दिया जा सकता, यही नुक़्ता हज़रत इमाम शाफ़िई (रह०) ने इन शब्दों में बयान किया है—

"सारे मुसलमानों का इस बात पर इत्तिफ़ाक़ है कि जिस आदमी पर अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल०) की सुन्नत ज़ाहिर हो चुकी हो उसके लिए जाइज़ नहीं कि वह किसी के क़ौल (कथन) की वजह से उसे छोड़ दे।" (आलामुल-मूक़िईन-2/283)

ऊपर दर्ज किए गए दोनों उद्धरण मसलकी इन्तिहापसन्दी में सन्तुलन का रास्ता दिखाते हैं।

इबादत में सन्तुलन

असन्तुलन का मुज़ाहरा (प्रदर्शन) इनसान बन्दगी के तरीक़ों यानी इबादत (उपासना) में भी करता है। मज़हब-पसन्द और दीनदार लोगों की बेएतिदालियाँ आमतौर पर इबादतों में होती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अधिक इबादत करने से आदमी ख़ुदा की समीपता और उसकी प्रसन्नता हासिल करता है। लेकिन क्या अल्लाह हमारी बहुत ज़्यादा इबादत का मुहताज है? और क्या हम उसकी इबादत का हक़ अदा कर सकते हैं? नहीं, और यक़ीनन नहीं, तो फिर हम सन्तुलन की सीमा से आगे बढ़कर अपने-आपको कठिनाई और मुसीबत में क्यों डालें? यही बुनियादी सवाल था जिसका जवाब नबी (सल्ल०) ने उस हदीस में दिया है जो हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) और हज़रत आइशा (रज़ि०) से रिवायत की गई है—

"मज़बूती अपनाओ, सन्तुलन से काम लो और जान लो कि तुममें से कोई आदमी अपने अमल (कर्म) की बदौलत जन्नत में नहीं जाएगा। अल्लाह को वह अमल अधिक पसन्द है जिसपर हमेशा अमल हो अगरचे मिक़दार (मात्रा) में वह कम हो।"

(हदीस : बुख़ारी)

हदीस की किताब मुस्लिम शरीफ़ के टीकाकार इमाम नववी (रह०) ने

अल-मुक़ारबह (सन्तुलन) की व्याख्या इस तरह की है—

"मुक़रबह का मतलब ऐसा सन्तुलन है जिसमें न तो हद से आगे बढ़ा जाए, न हद से नीचे जाया जाए।" (हदीस : रियाज़ुस्सालिहीन)

और मज़बूती अपनाओ का मतलब यह बयान किया गया है—

"मामले में मज़बूती का मतलब बीच का रास्ता अपनाना है। जो सन्तुलन और तवाज़ुन के नाम से जाना जाता है।"

(अब्दुल-अज़ीज़ अल-नहवी, अल-अदबुन-नबवी, पेज-183, बैरूत)

नबी (सल्ल०) को जब किसी के बारे में मालूम हुआ कि वह इबादत में सन्तुलित नहीं है तो आप (सल्ल०) ने उसको तंबीह की और उसका सुधार किया। एक बार हज़रत आइशा (रज़ि०) के पास नबी (सल्ल०) तशरीफ़ लाए, वहाँ एक औरत बैठी हुई थीं, आप (सल्ल०) ने पूछा : "ये कौन हैं?" हज़रत आइशा (रज़ि०) ने जवाब दिया : "यह फ़ुलाँ औरत है जिसकी नमाज़ के बड़े चरचे हैं।" (हदीस : मुसनद अहमद)

(इब्ने-माजा की रिवायत में "यह सोती नहीं है" के शब्द हैं। यानी वह औरत नमाज़ के एहतिमाम की वजह से सोती नहीं थी)।

तो अल्लाह के नबी (सल्ल०) ने कहा—

"ठहरो, अपनी ताक़त के मुताबिक़ इबादत करो, क्योंकि अल्लाह की क़सम, अल्लाह तो थकता नहीं मगर तुम ज़रूर थक जाओगी। अल्लाह का पसन्दीदा दीन वह है जिसपर अमल करनेवाला हमेशा अमल कर सके।" (हदीस : बुख़ारी)

हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि०) बयान करते हैं कि एक दिन तीन आदमी नबी (सल्ल०) की पाक बीवियों के कमरों की तरफ़ आए और नबी (सल्ल०) की इबादत के बारे में पूछने लगे। जब उनको नबी (सल्ल०) की इबादत के बारे में पूरी बात बताई गई तो उनको महसूस हुआ कि यह इबादत तो बहुत कम है, फिर ख़ुद ही कहने लगे कि हमारी नबी (सल्ल०) से क्या तुलना। आप (सल्ल०) के तो अगले-पिछले सभी गुनाह माफ़ कर दिए गए हैं। उनमें से एक ने कहा कि मैं रात-भर नमाज़ें पढ़ता रहूँगा, दूसरे ने

कहा कि मैं हमेशा रोज़े रखूँगा कभी इफ़तार न करूँगा, तीसरे ने कहा कि मैं औरतों से बिलकुल अलग-थलग रहूँगा, कभी शादी नहीं करूँगा। उसी वक़्त नबी (सल्ल॰) उनके पास तशरीफ़ लाए। यह सुनकर आप (सल्ल॰) ने कहा—

"क्या तुम्हीं लोगों ने अभी ये बातें कही हैं? ख़बरदार! ख़ुदा की क़सम, मैं तुम लोगों से अधिक अल्लाह से डरता हूँ और सबसे ज़्यादा परहेज़गार हूँ, लेकिन मैं रोज़ा भी रखता हूँ और इफ़तार भी करता हूँ, नमाज़ें भी पढ़ता हूँ और सोता भी हूँ और औरतों से शादी भी करता हूँ। जिसने मेरी सुन्नत (तरीक़े) से मुँह मोड़ा वह मेरी उम्मत (समुदाय) में से नहीं।" (हदीस : बुख़ारी)

ज़िक्र किए गए तीनों सहाबा (रज़ि॰) ने जिस इबादत को अपनाने का एलान किया था वह असन्तुलन पर आधारित थी और नबी (सल्ल॰) ने जिस इबादत की नसीहत फ़रमाई वह सन्तुलन पर आधारित है और यही तवाज़ुन व सन्तुलन आप (सल्ल॰) की सुन्नत (तरीक़ा) है और इसी के बारे में आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जिसने मेरे तरीक़े से मुँह मोड़ा वह मेरी उम्मत में से नहीं है।"

यह हदीस उन लोगों की आँखें खोलने के लिए काफ़ी है जो ज़िन्दगी को परेशानी, बेजा मशक़्क़त और करतब की तरह बरतते हैं और इसे दीनदारी का कमाल और परहेज़गारी का मेयार समझ लेते हैं।

मुजीबतुल बाहिलीया अपने बाप या चचा से रिवायत करती हैं कि वे अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) की ख़िदमत में हाज़िर हुए फिर चले गए और एक साल के बाद दोबारा हाज़िर हुए। इस अरसे में उनकी हालत बदल गई थी, कहने लगे अल्लाह के रसूल! आप मुझे पहचानते हैं? आप (सल्ल॰) ने पूछा : "तुम कौन हो?" जवाब दिया कि मैं बाहिली हूँ। पिछले साल भी हाज़िर हुआ था। आप (सल्ल॰) ने पूछा : "तुम्हें क्या हो गया है, तुम्हारी सेहत तो बहुत अच्छी थी?" जवाब दिया, जब से आप (सल्ल॰) के पास से गया हूँ रात के अलावा खाना नहीं खाया (यानी रोज़े से रहता हूँ)। आप (सल्ल॰) ने कहा, "अपने-आपको तुमने अज़ाब में क्यों डाला?" फिर कहा

"रमज़ान के रोज़े रखो और हर महीने में एक रोज़ा रखो।" उन्होंने कहा, कुछ ज़्यादा कीजिए, मैं ज़्यादा रोज़े रख सकता हूँ। आप (सल्ल॰) ने कहा, "महीने में दो दिन रोज़े रखो।" उन्होंने कहा कि मेरे अन्दर इससे भी अधिक की ताक़त है। आप (सल्ल॰) ने कहा, "तीन दिन रोज़े रखो," उन्होंने कहा और ज़्यादा कीजिए। नबी (सल्ल॰) ने कहा कि हुरमतवाले (प्रतिष्ठावाले) महीने में रोज़े रखो और छोड़ दो। आप (सल्ल॰) ने तीन उँगलियों से इशारा किया कि तीन दिन रोज़ा रखो और तीन दिन छोड़ दो।

(हदीस : अबू-दाऊद)

हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) कहीं जा रहे थे। एक आदमी को देखा कि वह पत्थर पर नमाज़ पढ़ रहा है। आप (सल्ल॰) गुज़र गए और मक्का के एक किनारे तशरीफ़ ले गए। कुछ देर तक वहाँ ठहरे और फिर वापस लौटे तो देखा कि वह आदमी पहले की तरह नमाज़ में व्यस्त है। तो आप (सल्ल॰) खड़े हुए और आसपास के लोगों को जमा करके कहा—

"ऐ लोगो! तुमपर एतिदाल (सन्तुलन) अपनाना लाज़िम है। (यह बात आप सल्ल॰ ने तीन बार कही) क्योंकि अल्लाह नहीं थकता लेकिन तुम ख़ुद ही थक जाओगे।" (हदीस : इब्ने-माजा)

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) एक बार ख़ुतबा दे रहे थे और एक आदमी धूप में खड़ा हुआ था। आप (सल्ल॰) ने उसके खड़ा रहने की वजह पूछी तो लोगों ने बताया कि वह अबू-इसराईल है, उसने नज़्र (मन्नत) मानी है कि वह धूप में खड़ा रहेगा, न बैठेगा और न छाया में आएगा, वह रोज़े रखेगा और बात नहीं करेगा। तब नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"उससे कहो कि बात करे, छाया में आए और बैठे और अपना रोज़ा पूरा करे।" (हदीस : बुख़ारी)

अन्दाज़ा कीजिए कि नबी (सल्ल॰) ने बात न करने, धूप में खड़ा रहने की मनाही क्यों फ़रमाई? इसी लिए न कि वह एक तरह की शिद्दतपसन्दी

थी और कुछ नहीं। अपने-आपको धूप में खड़ा रखने और अपने-आपको कष्ट पहुँचाने में न तो कोई अक़्लवाली बात है और न इबादत है। हज़रत अनस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) एक बार मस्जिद में तशरीफ़ लाए। वहाँ दो खम्भों के बीच एक रस्सी बँधी हुई देखी तो आप (सल्ल॰) ने पूछा, "यह कैसी रस्सी है?" सहाबा (रज़ि॰) ने जवाब दिया, "यह रस्सी हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) ने बाँध रखी है, जब वे इबादत करते-करते थक जाती हैं तो इस रस्सी का सहारा लेती हैं।" इसपर नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"इसे खोल दो, तुम लोगों को ताज़ा दम होकर नमाज़ पढ़नी चाहिए, जब थक जाओ तो सो जाओ।" (हदीस : बुख़ारी)

नबी (सल्ल॰) का तरीक़ा यह था कि जब कोई काम किसी सहाबी (रज़ि॰) के सुपुर्द करते तो उसके काम करने की ताक़त का लिहाज़ करके सुपुर्द करते, जब कि सहाबा (रज़ि॰) चाहते थे कि उनको और अधिक मेहनतवाला काम दिया जाए और आप (सल्ल॰) सख़्ती से मना करते, जैसा कि हज़रत आइशा (रज़ि॰) बयान करती हैं—

"अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) जब अपने साथियों (रज़ि॰) को हुक्म देते तो उनको ऐसे कामों का हुक्म देते जिनकी वे ताक़त रखते, वे कहते कि ऐ अल्लाह के पैग़म्बर! हम आप जैसे तो नहीं हैं, क्योंकि अल्लाह ने आपके अगले-पिछले सारे गुनाह माफ़ कर दिए, तो आप (सल्ल॰) नाराज़ हो जाते यहाँ तक कि नाराज़गी आप (सल्ल॰) के चेहरे से साफ़ झलकने लगती, फिर आप (सल्ल॰) कहते, बेशक तुममें सबसे अधिक परहेज़गार और अल्लाह को जाननेवाला मैं हूँ।" (हदीस : बुख़ारी)

नबी (सल्ल॰) की अपनी ज़िन्दगी भी सन्तुलित और तवाज़ुन का नमूना थी और उसी नमूने की पैरवी करना हमारे लिए भी लाज़िम है। चुनाँचे हज़रत समुरा-बिन-जुन्दुब (रज़ि॰) नबी (सल्ल॰) की नमाज़ों का हाल बयान करते हुए कहते हैं—

"मैं नबी (सल्ल॰) के साथ नमाज़ें पढ़ा करता था, चुनाँचे आप

(सल्ल०) की नमाज़ सन्तुलित होती थी और आप (सल्ल०) का खुतबा (भाषण) भी सन्तुलित होता था।" (हदीस : मुस्लिम)

इमाम तिरमिज़ी (रह०) ने 'शमाइले-तिरमिज़ी' में और हदीस के दूसरे आलिमों ने अपने हदीस के संग्रहों में नबी (सल्ल०) की सिफ़तों (गुणों) के तहत आप (सल्ल०) की आदतों, अख़लाक़, दिनचर्या और ज़िन्दगी के हालात का जो सविस्तार वर्णन किया है वह इस बात का सुबूत है कि आप (सल्ल०) का जीवन सन्तुलन का नमूना था और यही नमूना मुसलमानों के लिए हिदायत की रौशनी है।

हज़रत सईद-बिन-हिशाम (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने अपनी बीवी को तलाक़ दी और मदीना चला आया ताकि मैं मदीना की अपनी जायदाद बेच दूँ और उसकी आमदनी से हथियार ख़रीदूँ और जिहाद करूँ। मैंने इस मक़सद के लिए नबी (सल्ल०) के कुछ साथियों (रज़ि०) से मुलाक़ात की तो उन्होंने बताया कि हममें से भी छः लोगों ने इसी काम का इरादा किया था, लेकिन नबी (सल्ल०) ने उन सबको इससे रोक दिया और कहा—

"तुम्हारे लिए अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की ज़िन्दगी बेहतरीन नमूना है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

सच्ची बात यह है कि इबादत के सिलसिले में नबी (सल्ल०) का अमल और तरीक़ा ही हमारे लिए मुकम्मल नमूना है और उसी की पैरवी में हमारी खुशक़िस्मती, कामयाबी और नजात है।

अपनी उम्मत को नबी (सल्ल०) ने ख़ास तौर से आगाह किया कि दीन (धर्म) में इन्तिहापसन्दी से काम नहीं लिया जाए और आसानी को सख़्ती में न बदला जाए। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) की रिवायत के मुताबिक़ नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"दीन आसान है, जो आदमी दीन में सख़्ती पैदा करता है वह पराजित हो जाता है, तवाज़ुन और सन्तुलन का रास्ता अपनाओ और खुशख़बरी हासिल करो और सुबह-शाम और रात के कुछ हिस्से में इबादत (उपासना) के ज़रिए मदद हासिल करो।"

(हदीस : बुख़ारी)

एक दूसरी हदीस में हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"तुममें से कोई आदमी अपने अमल की बदौलत नजात नहीं पा सकता।" सहाबा (रज़ि॰) ने पूछा, "क्या आप भी नहीं ऐ अल्लाह के रसूल?" आप (सल्ल॰) ने कहा : "हाँ मैं भी नहीं, सिवाय इसके कि अल्लाह मुझपर अपनी रहमत करे। तुमको चाहिए कि बिलकुल ठीक-ठीक अमल करो, सन्तुलित रास्ता अपनाओ, सुबह-शाम इसी प्रकार रात को ज़रा चल लिया करो और तवाज़ुन अपनाओ, मंज़िल तक पहुँच जाओगे।" (हदीस : बुख़ारी)

इबादत में बेएतिदाली का एक पहलू यह भी है कि इनसान ऐसी इबादत और उपासना की पाबन्दी करे जो अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) से साबित न हो, मिसाल के तौर पर नफ़्ल नमाज़ों का पाबन्द बनना अल्लाह से निकटता का साधन है। लेकिन ऐसे मौक़ों पर नफ़्ल नमाज़ें पढ़ना जो नबी (सल्ल॰) से साबित न हो बेएतिदाली (असन्तुलन) है। हज़रत अली (रज़ि॰) ने एक आदमी को देखा कि ईद की नमाज़ से पहले नफ़्ल नमाज़ पढ़ रहा है। हज़रत अली (रज़ि॰) ने उसे नफ़्ल नमाज़ पढ़ने से रोक दिया। उसने कहा, "ऐ मोमिनों के अमीर, अल्लाह मुझे नमाज़ पढ़ने पर अज़ाब नहीं देगा।" हज़रत अली (रज़ि॰) ने उसकी यह बात सुनकर कहा–

"मैं जानता हूँ कि अल्लाह किसी ऐसे काम पर सवाब भी नहीं देगा जिसे अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने नहीं किया है या जिसके करने पर उभारा नहीं है।" (नजमुल-बयान, पेज-73)

इबादत में सन्तुलन की हिकमत

नबी (सल्ल॰) के सन्तुलन की नसीहत अपने अन्दर जो गहरे मानी रखती है उसका अन्दाज़ा करने के लिए हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) की ज़िन्दगी के हालात को पढ़ना बहुत ज़रूरी है। उनका माजरा खुद उन्हीं की ज़बानी सुनिए– वे कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को मेरे

बारे में जब यह मालूम हुआ कि मैं ज़िन्दगी-भर लगातार दिन को रोज़े रखने और रात को नमाज़ पढ़ने का इरादा ज़ाहिर करता हूँ तो आप (सल्ल०) ने मुझसे पूछा कि क्या तुमने यह बात कही है? मैंने जवाब दिया, जी हाँ, ऐ ख़ुदा के रसूल! मेरे माँ-बाप आप पर क़ुरबान हों। इसपर आप (सल्ल०) ने कहा कि तुम इसको बरदाश्त नहीं कर सकते, इसलिए तुम रोज़ा भी रखो और इफ़तार (खाना-पीना) भी करो, सोओ भी और नमाज़ भी पढ़ो और महीने में सिर्फ़ तीन दिन रोज़े रखो, क्योंकि एक नेकी का बदला दस गुना मिलता है। और यह साल-भर रोज़े रखने के बराबर होगा। मैंने कहा कि मेरे अन्दर इससे अधिक की ताक़त है, तो आप (सल्ल०) ने कहा कि एक दिन रोज़ा रखो और एक दिन खाना खाया करो, यही हज़रत दाऊद (अलैहि०) का रोज़ा है और सबसे अच्छा रोज़ा है। मैंने कहा कि मैं इससे भी अधिक की ताक़त रखता हूँ, तो आप (सल्ल०) ने कहा कि इससे बेहतर कुछ नहीं है।

(हदीस : बुख़ारी)

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस (रज़ि०) की बयान की हुई एक और हदीस इमाम बुख़ारी (रह०) ने किताब 'फ़ज़ाइलुल-क़ुरआन' में नक़्ल की है, इसे ऊपर ज़िक्र की गई हदीस का दूसरा हिस्सा समझना चाहिए। हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) बयान करते हैं कि मेरे बाप ने एक ऊँचे ख़ानदान की लड़की से मेरी शादी कर दी, अपनी बहू की देखभाल करते रहते थे और उससे उसके शौहर के (यानी मेरे) बारे में पूछताछ किया करते थे तो वह कहा करती कि अच्छे आदमी हैं वह इशारे में यह भी बताती कि हम तन्हा ही रहते हैं वे हम से कोई वास्ता नहीं रखते। (उनका मतलब यह बताना होता था कि वे हम से मियाँ-बीवी का ताल्लुक़ नहीं रखते।)

जब हज़रत अम्र-बिन-आस (रज़ि०) ने इसे कई बार सुना तो नबी (सल्ल०) से इस बात को बयान किया। आप (सल्ल०) ने कहा कि अब्दुल्लाह को मेरे पास भेज दो। चुनाँचे मैंने आप (सल्ल०) से मुलाक़ात की तो आप (सल्ल०) ने पूछा कि रोज़ा किस तरह रखते हो? मैंने जवाब दिया, हर दिन। आप (सल्ल०) ने पूछा कि क़ुरआन किस तरह ख़त्म करते हो? मैंने जवाब में कहा कि हर रात में एक बार क़ुरआन ख़त्म करता हूँ। तो आप (सल्ल०)

ने कहा कि हर महीने में तीन दिन रोज़े रखो और हर महीने में एक बार कुरआन ख़त्म करो। मैंने कहा कि मैं इससे ज़्यादा की ताक़त रखता हूँ तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि हफ़्ते में तीन दिन रोज़ा रखो। मैंने कहा कि मैं तो इससे ज़्यादा की ताक़त रखता हूँ तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि एक दिन रोज़ा रखो। दो दिन इफ़तार करो। मैंने कहा कि मैं तो इससे भी ज़्यादा की ताक़त रखता हूँ, तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया तो फिर बेहतरीन रोज़ा हज़रत दाऊद (अलैहि॰) का है यानी एक दिन रोज़ा रखो और एक दिन खाओ-पियो और सात रातों में एक क़ुरआन ख़त्म किया करो। हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि॰) बुढ़ापे में यह हदीस बयान करते हुए कहते हैं, "ऐ काश! मैंने अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) की दी हुई छूट क़बूल कर ली होती, अब तो मैं बूढ़ा और कमज़ोर हो गया हूँ।" (हदीस : बुख़ारी)

शाह वलीयुल्लाह मुहद्दिस देहलवी (रह॰) ने अपनी किताब हुज्जतुल्लाहिल-बालिग़ा में इबादतों में सन्तुलन और तवाज़ुन के बारे में बड़ी क़ीमती बहस की है। शाह साहब (रह॰) लिखते हैं—

"इस्लाम में इताअत और इबादत का मक़सद यह है कि इनसान के नफ़्स (मन) का सुधार हो जाए और उसका टेढ़पन दूर जो जाए। कर्मों की गिनती अपेक्षित नहीं है, क्योंकि आम जनता के लिए उसपर अमल करना दुश्वार हो जाएगा। यही मतलब है नबी (सल्ल॰) की इस हदीस का कि इस्तिक़ामत अपनाओ (यानी जो नेक काम करो उसपर जमे रहो) और इबादत को गिना न करो, अपनी पूरी ताक़त-भर अमल करो। जमे रहने के लिए अमल की एक निश्चित मिक़दार (मात्रा) ही काफ़ी है जिससे इनसान के अन्दर वह बेदारी पैदा हो जाए कि फ़रिश्तों जैसी ख़ूबियों की लज़्ज़त महसूस करने लगे। हैवानी हरकतों से उसे तकलीफ़ महसूस हो और उसमें इतनी सूझ-बूझ पैदा हो जाए कि हैवानी आचरण पूरी तरह फ़रिश्तों जैसे आचरण के अधीन हो जाए। अब अगर वह अधिक तादाद में अमल करने लगे तो मन इसका आदी हो जाएगा और इसे मामूल की चीज़ समझने लगेगा और इससे वह नतीजा

हासिल न हो सकेगा जो चाहते हैं।

यह बात भी सामने रहे कि शरीअत के निहायत अहम मक़सदों में से एक यह है कि दीन में ग़ुलू यानी अति और तशद्दुद (सख़्ती) का दरवाज़ा बन्द किया जाए ताकि लोग उसे दाँतों से न पकड़ लें और उनके बाद जो लोग आएँ वे यह समझें कि ये भी आसमानी इबादतों में से हैं जो उनपर फ़र्ज़ की गई हैं, फिर उनके बाद दूसरा गरोह आए जिसके निकट यह गुमान यक़ीन में बदल चुका हो और यह सन्देहवाली चीज़ यक़ीनी बन जाए, नतीजे में दीन मिलावट का शिकार हो जाए। यही मतलब है अल्लाह के इस कथन का "और संन्यास उन्होंने ख़ुद ईजाद कर लिया, हमने उनपर फ़र्ज़ नहीं किया था।"

(क़ुरआन, सूरा-57 हदीद, आयत-27)

साथ ही यह कि जिस आदमी के ज़ेहन में यह बात बैठ गई हो चाहे ज़बान से वह इसका विरोध करे कि अल्लाह की ख़ुशी हासिल करने का तरीक़ा यही मशक़्क़त भरी इबादतें हैं और अगर वह इनमें कोताही करेगा तो उसके और उसके नफ़्स (मन) के सुधार के बीच भारी परदा पड़ जाएगा, इस प्रकार वह ख़ुदा के सामने कोताही का मुजरिम होगा। ऐसे आदमी का मामला यह है कि उसकी पूछगच्छ उसके उसी ख़याल के मुताबिक़ होगी और उसके अक़ीदे के मुताबिक़ तफ़रीत से दूर होने की माँग होगी। अब अगर वह इसमें कोताही करता है तो उसके इल्म (ज्ञान) उल्टा उसपर नुक़सान और अन्धकार का सबब होंगे और उसकी इबादत क़बूल होने से वंचित रह जाएगी। यही मतलब है नबी (सल्ल०) के इस वचन का--

"दीन आसान है, और जो आदमी दीन में सख़्ती करता है दीन उसे मग़लूब कर देता है।"

इन्हीं कारणों के आधार पर अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल०) ने अपनी उम्मत को ताकीद की है कि वह अमल के मामले में सन्तुलन का दामन हाथ से न छोड़े और इस हद से आगे न बढ़े कि लोग

उकताहट का शिकार हो जाएँ, दीन का मामला उनपर संदेह भरा हो जाए और सामाजिकता की गाड़ी रुक जाए।"

(हुज्जतुल्लाहिल-बालिग़ा-2/21,22)

बहुत अधिक इबादत की घटनाएँ

मौलाना अब्दुल-हई लखनवी (रह०) ने अपने रिसाले (पत्रिका) "इक़ामतुल हुज्जति अला अन्नलइकसा-रफ़िल-इबादति लै-स बि बिदअतिन" में विस्तार से लिखा है—

"इबादत और रियाज़त की कसरत (अधिकता) और इस सिलसिले में उठाई जानेवाली तकलीफ़ बिदअत नहीं है, बल्कि सहाबा किराम (रज़ि०) और ताबईन (रह०) का इसपर अमल रहा है। मिसाल के तौर पर हज़रत उमर (रज़ि०) के बारे में कहा जाता है कि वह इशा की नमाज़ पढ़कर जाते थे तो फ़ज्र की नमाज़ तक अपने घर में नमाज़ पढ़ने में लगे रहते थे, और उनके बेटे हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) भी ऐसा ही करते थे। हज़रत उसमान ग़नी (रज़ि०) हमेशा रोज़ा रखा करते थे और रात के शुरू हिस्से के अलावा रात-भर इबादत करते थे। हज़रत अली (रज़ि०) दिन-भर में आठ (8) बार पूरा क़ुरआन पढ़ लिया करते। हज़रत सईद-बिन-मुसैयिब (रज़ि०) ने पचास साल तक इशा के वज़ू से फ़ज्र की नमाज़ पढ़ी। आमिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) रोज़ाना एक हज़ार रकअतें नमाज़ पढ़ा करते थे। साबित-बिन-असलम (रज़ि०) पचास साल तक रात-भर इबादत में लगे रहे। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह०) चालीस साल तक रात में जागते रहे और तीस साल तक लगातार रोज़ा रखा, बल्कि उनके शागिर्द अब्दुल्लाह-बिन-मुबारक (रह०) से मंसूब बयान के मुताबिक़ इमाम साहब ने चालीस साल तक एक वज़ू से पाँचों नमाज़ें अदा कीं।" (मजमूआ तोहफ़तुत्तुलबा पेज-12,18 प्रकाशक, यूसुफ़ी लखनऊ-1919)

उसूली तौर पर यह बात बिलकुल ठीक है कि अपनी ताक़त-भर इबादत में कसरत (अधिकता) बिदअत नहीं है, लेकिन इस बारे में जो अजीबो-ग़रीब

और यक़ीन न आ सकनेवाली घटनाएँ बयान की जाती हैं उनपर रुककर विचार करना चाहिए। इस तरह के चकित कर देनेवाले क़िस्से ज़्यादातर अबू-नुऐम असफ़हानी की किताब 'हिलयतुल-औलिया' से नक़्ल किए जाते हैं। इल्म रखनेवाले जो इस किताब को पढ़ चुके हैं, वे जानते हैं कि यह किताब ऐसी है जिसके लिखने में एहतियात (सावधानी) का ख़याल नहीं रखा गया है, और इस किताब का कोई मेयार भी नहीं है। इसी लिए हज़रत शाह वलीयुल्लाह देहलवी (रह०) ने इसे हदीस की किताबों के तबक़ों में चौथे दर्जे पर रखा है। इस किताब में वाइज़ (नसीहत करनेवाले) की मुबालग़े से भरी हुई बातें हैं और दुनियादार व ज़ईफ़ (मेयार से नीचे) लोगों की रिवायतें हैं जिनको हदीस के आलिमों ने क़बूल नहीं किया।

(हुज्जतुल्लाहिल-बालिग़ा-1/135)

जहाँ तक सहाबा (रज़ि०) का मामला है तो उनसे इस क़िस्म के क़िस्से मंसूब (जोड़ने) करने में भी बड़ी सावधानी बरतनी ज़रूरी है। कुछ सहाबा (रज़ि०) यक़ीनन बहुत ज़्यादा इबादत के लिए मशहूर हैं। मिसाल के तौर पर हज़रत उसमान (रज़ि०) और अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) वग़ैरा-वग़ैरा। मगर इस हद तक नहीं कि जिस हद तक हमारे बुज़ुर्ग अबू-नुऐम असफ़हानी बयान करते हैं। फिर सही हदीसों से इसकी पुष्टि भी नहीं होती। हदीस की मुस्तनद (प्रमाणित) छः किताबों की रिवायतों से उन सहाबा (रज़ि०) की जो तस्वीर सामने आती है वह बहुत ही मोतदिल (सन्तुलित) है। और अगर ये क़िस्से मान भी लिए जाएँ कि सही हैं तो यह उनका मामूल नहीं था, बल्कि कभी-कभी ऐसा करते थे। जिस तरह नबी (सल्ल०) के बारे में सहीह हदीसों से साबित है कि आप (सल्ल०) रात को नमाज़ के लिए खड़े होते तो इतनी देर तक खड़े रहते कि आप (सल्ल०) के मुबारक पैरों में सूजन आ जाती।

(हदीस : बुख़ारी)

यह भी नबी (सल्ल०) का मामूल न था, बल्कि कभी-कभी ऐसा होता था, क्योंकि आप (सल्ल०) के दिन-रात के हालात सहीह हदीसों में मौजूद हैं इसलिए किसी भी हदीस से यह नहीं साबित होता कि एतिकाफ़ (रमज़ान के महीने में अन्तिम दस दिन मस्जिद में ठहरे रहना) के अलावा आप

(सल्ल॰) ने कभी रात-भर नफ़्ल नमाज़ें पढ़ी हों और बिलकुल आराम न किया हो, चुनाँचे हज़रत आइशा (रज़ि॰) से रिवायत है। वे कहती हैं—

"कभी नबी (सल्ल॰) ने रात-भर सुबह तक नमाज़ नहीं पढ़ी और न किसी रात में पूरा क़ुरआन पढ़ा और न रमज़ान के अलावा महीने भर के रोज़े रखे, जब आप (सल्ल॰) कोई नमाज़ पढ़ते तो हमेशा उसे अदा करते और जब आप (सल्ल॰) पर नींद तारी होती तो सो जाते और दिन में पफ़्ल नमाज़ की बारह रकअतें अदा करते।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

इसी तरह लगातार रोज़े रखने से भी नबी (सल्ल॰) ने सहाबा (रज़ि॰) को मना किया था, इसके बावजूद सहाबा (रज़ि॰) की तरफ़ यह मंसूब करना कि वे हमेशा रोज़े रखते, रात-रातभर नमाज़ें पढ़ते, दिन में आठ-आठ क़ुरआन ख़त्म करते, नामुनासिब मालूम होता है। सहाबा (रज़ि॰) न सिर्फ़ नबी (सल्ल॰) पर फ़िदा होनेवाले थे बल्कि शरीअत के मिज़ाज (स्वभाव) से भी वाक़िफ़ थे। वे नबी (सल्ल॰) की मुख़ालिफ़त अपने अमल से नहीं कर सकते। बहुत ज़्यादा इबादत करना यक़ीनन अल्लाह की ख़ुशी हासिल करने का ज़रिआ है, मगर अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) का अनुपालन (पैरवी) सबसे बड़ी ख़ुशनसीबी है।

जहाँ तक दूसरे बुज़ुर्गों का मामला है तो सही बात यह है कि उनके बारे में भी बढ़ा-चढ़ाकर बयान किया गया है। अगर कोई आदमी संजीदगी से इन घटनाओं पर ग़ौर-फ़िक्र करे तो उनकी कमज़ोरी ख़ुद ही खुल जाएगी। मिसाल के तौर पर हज़रत अली (रज़ि॰) के बारे में जो यह कहा जाता है कि दिन में आठ बार क़ुरआन ख़त्म किया करते थे। तो ज़रा सोचिए कि एक क़ुरआन ख़त्म करने में कम-से-कम पाँच घंटे लगते हैं, वह भी इस हालत में कि तिलावत की शर्तों का लिहाज़ न किया जाए, जिसकी हज़रत अली (रज़ि॰) जैसे बड़े और महान सहाबी के बारे में कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस तरह आठ बार क़ुरआन ख़त्म करने के लिए कम-से-कम चालीस घंटे की ज़रूरत होगी और यह एक दिन में संभव नहीं।

इसके विपरीत क़ुरआन मजीद की तिलावत के सिलसिले में सहाबा (रज़ि॰) की सहीह तस्वीर हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि॰) की बयान की हुई हदीस में नज़र आती है। वे कहते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने सहाबा (रज़ि॰) से पूछा—

"क्या तुममें से कोई आदमी एक रात में तिहाई क़ुरआन पढ़ने से बेबस है?" यह सहाबा (रज़ि॰) को बहुत भारी मालूम हुआ, इसलिए वे बोले कि ऐ अल्लाह के पैग़म्बर! हममें से कौन इसकी ताक़त रखता है? तब नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"अल्लाहुल वाहिदुस्समद" (यानी सूरा-112 इख़लास) तिहाई क़ुरआन है।"
(हदीस : बुख़ारी)

इस हदीस से मालूम होता है कि तिहाई क़ुरआन भी एक रात में सहाबा (रज़ि॰) नहीं पढ़ते थे, इसलिए पूरा क़ुरआन ख़त्म करने की रिवायत और बयान की गई बातों की सच्चाई क्या है, इसका अन्दाज़ा लगाना कुछ मुश्किल नहीं।

इसी प्रकार हज़रत इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) के क़िस्से को लीजिए, उनका रात-भर जागना, संयम, ईश-भय और परहेज़गारी अपनी जगह, मगर क्या यह संभव है कि कोई आदमी चालीस साल तक एक ही वुज़ू से पाँचों वक़्त की नमाज़ें पढ़ता रहे? और क्या यह नबी (सल्ल॰) की सुन्नत (तरीक़े) के ख़िलाफ़ नहीं है कि चालीस साल तक कोई आदमी रात को बिलकुल न सोए और इशा (रात) से फ़ज्र (सुबह) तक इबादत में ही लगा रहे? क्या अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने इसकी इजाज़त दी है? फिर भी इन बुज़ुर्गों के अमल (कर्मों) और दिनचर्या के नतीजे निकालने या उनकी तरफ़ सच्चाई के ख़िलाफ़ बातें मंसूब करने से बेहतर यह है कि क़ुरआन और नबी (सल्ल॰) की सुन्नत के आइने में उनको देख लिया जाए ताकि यह आसान और सीधा-सच्चा दीन एक पहेली न समझ लिया जाए, जिसे हल करना आम इनसानों के बस से बाहर हो। सच्ची बात यह है कि पैग़म्बर (सल्ल॰) का आदर्श ही ज़िन्दगी के हर मामले में काफ़ी है और सहाबा (रज़ि॰) का आप (सल्ल॰) की सुन्नत का अनुपालन जिसका विवरण हदीस की प्रमाणित

किताबों में मिलता है, मुसलमानों के लिए दिव्य प्रकाश है।

असन्तुलन के नुक़सान

जिस तरह दवा या खाने-पीने के असन्तुलन से शरीर में बिगाड़ पैदा हो जाता है, उसी तरह सोच-विचार और कर्मों व आचरण के असन्तुलन से व्यक्ति और समाज को नुक़सान होता है, इसी लिए तो नबी (सल्ल॰) ने असन्तुलन को हलाकत और तबाही का कारण ठहराया है। चुनाँचे एक हदीस में हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि॰) ने बयान किया है—

"शिद्दत (सख़्ती) अपनानेवाले हलाक हो गए।" (हदीस : मुस्लिम)

यह बात नबी (सल्ल॰) ने तीन बार कही। शिद्दत का मतलब यह है कि "करनी और कथनी में शिद्दत और सख़्ती को इख़्तियार करना।"
(अल-मजमूउल-मुग़ीसि फ़िल ग़रीबिल- क़ुरआनि-वल-हदीसि-3/313)

इस्लामी शरीअत में इन्तिहापसन्दी की गुंजाइश नहीं है, क्योंकि असन्तुलन हलाकत व तबाही लाता है। अगर नबी (सल्ल॰) की इस हदीस पर सोच-विचार किया जाए तो असन्तुलन का नुक़सान और हलाकत के विभिन्न पहलू सामने आते हैं।

पहला नुक़सान तो यह है कि असन्तुलन अपनाकर कोई आदमी अधिक समय तक अपने मामूलात को क़ायम नहीं रख सकता। इस तरह आदमी बहुत जल्दी थककर चूर हो जाता है, वह जिस ऊँचाई को अपनाने का दावेदार होता है, उसपर उसको क़ायम रहना मुश्किल हो जाता है, उसका तवाज़ुन और सन्तुलन बिगड़ने लगता है, फिर वह दूसरी इन्तिहा की तरफ़ आता है और वह सब कुछ खो देता है जो सन्तुलन के नतीजे में हासिल हो सकती थी, जिसकी तरफ़ नबी (सल्ल॰) की इस हदीस में इशारा किया गया है—

"न मसाफ़त (दूरी) ही तय हुई और न सवारी ही बाक़ी रही, साथी भी छूट गए और सवारी भी थककर चूर हो गई।"
(हदीस : तबरानी)

बेएतिदाली (असन्तुलन) का दूसरा नुक़सान यह होता है कि आदमी को

जमाव नसीब नहीं होता। जमाव को हदीस शरीफ़ में बेहतरीन इस्लाम कहा गया है। यानी "कहो मैं ईमान लाया अल्लाह पर फिर जम जाओ।" (हदीस : मुस्लिम) यह जमाव क्या है? इसका दरजा और मक़ाम क्या है कि सूफ़ी लोगों के यहाँ यह कहावत मशहूर है 'करामत से अधिक बड़ा दरजा इस्तिक़ामत यानी जमाव का है'। मतलब यह कि आदमी थोड़ा अमल करे लेकिन हमेशा करता रहे, इसलिए कि नबी (सल्ल०) के फ़रमान के अनुसार अल्लाह को वही अमल पसन्द है जो चाहे थोड़ा ही हो मगर उसपर हमेशा अमल किया जाए, और इसी के बारे में क़ुरआन कहता है—

"जिन लोगों ने कहा कि अल्लाह हमारा पालनहार रब है और फिर वे उसपर जमे रहे, यक़ीनन उनपर फ़रिश्ते उतरते हैं और उनसे कहते हैं कि न डरो और न ग़म करो और ख़ुश हो जाओ उस जन्नत की ख़ुशख़बरी से जिसका तुमसे वादा किया गया है।"

(क़ुरआन, सूरा-41 हा-मीम-सजदा, आयत-30)

असन्तुलन का तीसरा नुक़सान यह है कि आदमी अपनी मनचाही मंज़िल तक नहीं पहुँच पाता। इसी लिए नबी (सल्ल०) ने कहा कि 'सन्तुलन अपनाओ, मंज़िल पर पहुँच जाओगे'। नबी (सल्ल०) के इस फ़रमान का विरोध करके आदमी अपनी मंज़िल तक कैसे पहुँच सकता है? इसको क़रीब से समझने के लिए बच्चों को पढ़ाया और सुनाया जानेवाला वह मशहूर क़िस्सा काफ़ी है कि जिसमें एक कछुवे और ख़रगोश में बाज़ी (शर्त) लगती है और ख़रगोश तेज़ गति से दौड़कर भी मंज़िल तक नहीं पहुँचता बल्कि रास्ते में सो जाता है और कछुवा अपनी सन्तुलित चाल चलता हुआ मंज़िल तक पहुँच जाता है।

असन्तुलन का चौथा नुक़सान यह होता है कि दूसरे लोग ऐसे आदमी से घबराने और दूर भागने लगते हैं। उसके निकट आने और उससे प्रेम करने के बजाय उससे कटने और बचने लगते हैं और दूर हो जाते हैं। इस तरह ऐसा आदमी अपने आचार-विचार को नमूना बनाने और इसके असर का दायरा बढ़ाने के बजाय उसे नाक़ाबिले-अमल बना देता है और असर के दायरे को सीमित और छोटा बना देता है। ऐसे इनसान के ख़िलाफ़ दूसरे

लोगों में एक प्रकार की प्रतिक्रिया (रद्दे-अमल) की कैफ़ियत भी पैदा होने लगती है जो कभी-कभी उसके लिए हानिकारक साबित होती है। इसकी मिसाल हज़रत मुआज़-बिन-जबल (रज़ि॰) की नमाज़ की इमामत का मामला है। एक सहाबी (रज़ि॰) नबी (सल्ल॰) के पास आकर शिकायत करते हैं—

"ऐ अल्लाह के पैग़म्बर! चूँकि मुआज़-बिन-जबल (रज़ि॰) लम्बी नमाज़ पढ़ाते हैं इसलिए मैं नमाज़ में हाज़िर नहीं हो पाता।" यह सुनकर आप (सल्ल॰) मिम्बर पर आए और सख़्त नाराज़गी के आलम में कहा : "लोगो! तुम दीन (इस्लाम) से लोगों को दूर भगाने का सबब बन रहे हो, ख़बरदार जो आदमी इमामत करे वह हल्की नमाज़ पढ़ाए, क्योंकि नमाज़ में बूढ़े, मरीज़ और हाजतमन्द लोग भी होते हैं।" (हदीस : बुख़ारी)

असन्तुलन का पाँचवा नुक़सान यह होता है कि आदमी जिस काम में असन्तुलन दिखाता है वह उसके महत्त्व और उसकी क़द्रो-क़ीमत को घटा देता है। चाहे लोग उस काम को हैरत और आश्चर्य की नज़र से देखते हों, मगर उसे नाक़ाबिले-अमल समझकर रद्द कर देते हैं और समझते हैं कि इस काम के करने के क़ाबिल कुछ ख़ास लोग ही हो सकते हैं, आम लोग किसी हाल में इस काम को नहीं कर सकते। मिसाल के तौर पर जब कुछ बुज़ुर्गों के बारे में यह बताया जाता है कि वे रात-भर नमाज़ें पढ़ते थे, इशा के वुज़ू से फ़ज्र की नमाज़ अदा करते थे, रात-भर में पूरा क़ुरआन ख़त्म करते थे तो आमतौर पर सुननेवाले यह समझते हैं कि यह भी करामत (चमत्कार) की तरह की कोई चीज़ है और आम लोगों के लिए करने के क़ाबिल अमल नहीं है। फिर वे नफ़्ल नमाज़ें, तिलावत की ज़रूरी हैसियत के साथ भी इनसाफ़ नहीं कर पाते।

यह क़िस्सा बहुत मशहूर है कि हज़रत बायज़ीद बिस्तामी (रह॰) के पड़ोस में एक यहूदी रहता था, उससे एक दिन किसी मुसलमान ने कहा कि तुम एक लम्बे समय से हज़रत बायज़ीद (रह॰) के पड़ोस में रहते हो। मगर अभी तक तुमको इस्लाम क़बूल करने की तौफ़ीक़ (सौभाग्य) नहीं हुई? उस यहूदी ने जवाब दिया कि मैं कौन-सा इस्लाम क़बूल करूँ? वह इस्लाम

जिसपर तुम अमल करते हो तो उसकी मुझे चाहत नहीं और वह इस्लाम जो हज़रत बायज़ीद (रह०) का है इसकी मुझमें ताक़त नहीं।

(तज़किरतुल-औलिया-1/149)

असन्तुलन का छठा नुक़सान यह होता है कि समाज के बनने-बनाने और तहज़ीब व रहन-सहन के तरीक़े की तरक़्क़ी रुक जाती है। इस्लामी जीवन-व्यवस्था की मज़बूती व जमाव का दारोमदार व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन के विभिन्न पहलुओं और माँगों में तवाज़ुन और सन्तुलन क़ायम करने पर है। असन्तुलन इस जमाव और मज़बूती को प्रभावित करता है और तहज़ीब और रहन-सहन की गाड़ी की गति धीमी पड़ जाती है। हज़रत शाह वलीयुल्लाह (रह०) के कथन के अनुसार—

"इस्लाम का मक़सद यह है कि एहसान (उत्तमता) की सिफ़त व ख़ूबी को इस तरह हासिल किया जाए कि तहज़ीब और तमद्दुन में रुकावट न हो।" (हुज्जतुल्लाहिल-बालिग़ा-2/21)

असन्तुलन का सबसे बड़ा नुक़सान यह है कि इसको अल्लाह और उसके पैग़म्बर (सल्ल०) नापसन्द करते हैं, और जिस चीज़ को अल्लाह और उसके रसूल नापसन्द करें उसे करना यक़ीनन तबाही व हलाकत का कारण है। कामयाबी और सफलता सिर्फ़ अल्लाह और उसके पैग़म्बर (सल्ल०) का अनुपालन करने में है।

"जिसने अल्लाह और उसके पैग़म्बर (सल्ल०) का अनुपालन किया उसने बड़ी कामयाबी व सफलता प्राप्त की।"

(क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-71)

■ ■ ■